॥ श्रीहरिः ॥

मानसमें नाम वन्दना

महिमा जासु जान गनराऊ प्रथम पुजिअत नामप्रभाऊ

स्वामी रामसुखदास
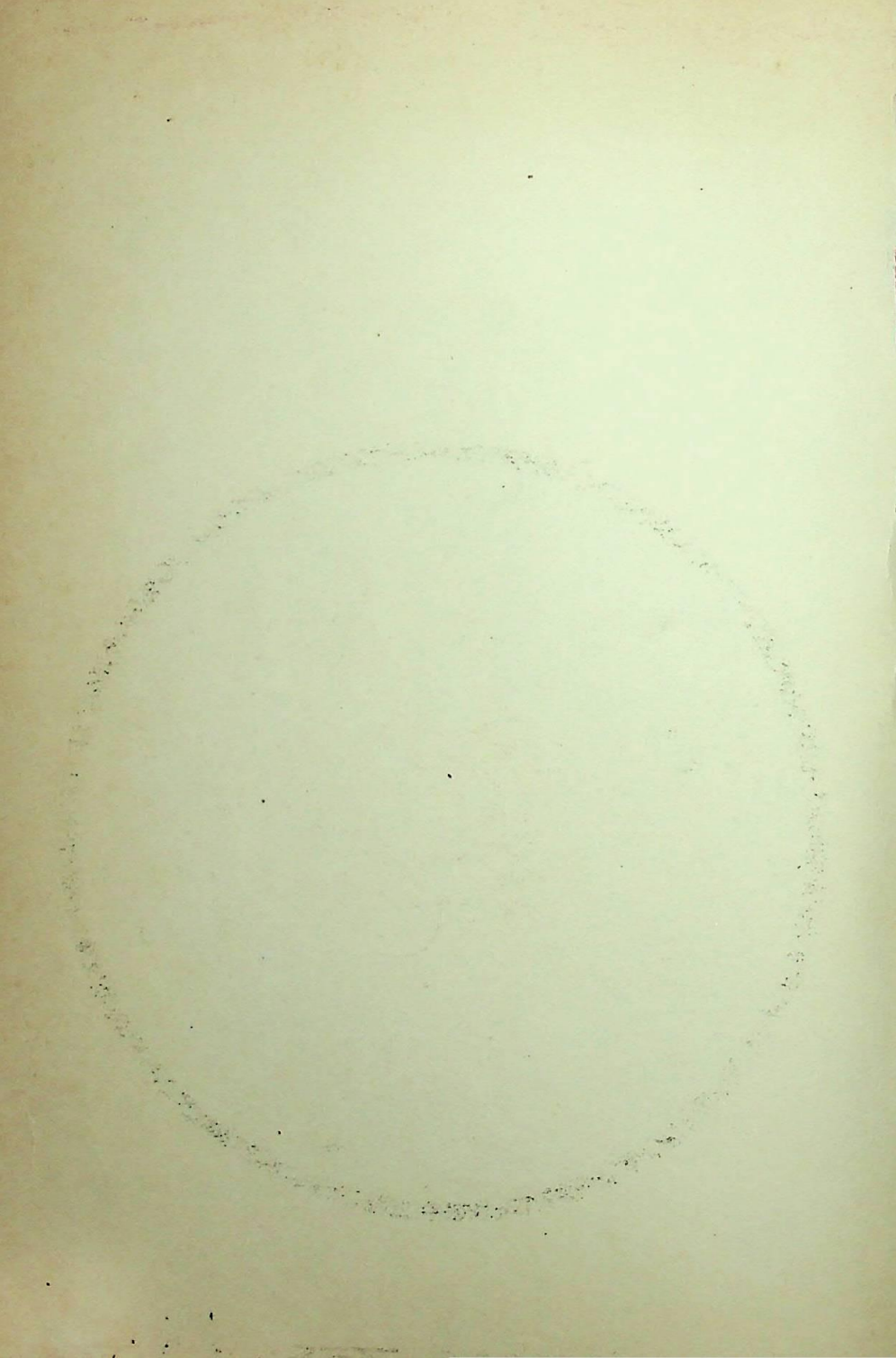
॥ श्रीहरिः ॥

मानसमें नाम वन्दना

निधाय मायामुदरे स्वकीय संतिष्ठिते राम इति श्रुतंयत् ।
तत्साक्षि यन्त्रं लिखितं सुखेन रेफेन मध्य प्रगतेन मेन ॥

स्वामी रामसुखदास

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४० से २०४७ तक	९६,०००
सं० २०४८ आठवाँ संस्करण	१५,०००
	कुल १,११,०००

मूल्य—पाँच रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने बड़े सुन्दर ढंगसे नौ दोहोंमें 'राम' नामकी वन्दना करते हुए उसकी महिमाका वर्णन किया है। कुछ वर्ष पूर्व हमारे परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजने इस प्रकरणपर प्रवचन दिये थे। अनेक भाई-बहनोंके विशेष आग्रहवश उन्हीं प्रवचनोंको प्रकाशित किया जा रहा है। सगुण और निर्गुण उपासनामें रुचि रखनेवाले सभी साधकोंके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसमें भगवन्नामके प्रभावको बहुत ही सरल रीतिसे साधारण बोलचालकी भाषामें समझाया गया है।

सभी साधकोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि प्रस्तुत प्रवचन-संग्रहके भाषा-सम्बन्धी दोषोंकी ओर ध्यान न देकर केवल भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे इनमें कथित विषयका गंभीरतापूर्वक अध्ययन करें। इससे उन्हें अपने साधन-पथपर अग्रसर होनेमें अभूतपूर्व सहायता प्राप्त हो सकती है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
प्रवचन—१	१
श्रीसीताराम-वन्दना	१
नाम-वन्दना	५
महामन्त्रकी महिमा	९
प्रवचन—२	१३
नारद-राम-संवाद	१५
शिव-पार्वतीका नाम-प्रेम	१८
नाममें अरुचिका कारण	२३
अर्थार्थी भक्त ध्रुव	२७
पापसे छूटनेका उपाय	२८
प्रवचन—३	३३
नाम-जपका अनुभव	३३
तुलसीका प्रिय 'राम' नाम	३८
नाम-जपका चमत्कार	४१
धनवत्ताका अभिमान	४७
सन्तद्वारा सेठको शिक्षा	४९
सन्तोंका स्वभाव	५२
प्रवचन—४	५७
अमृतमय 'राम' नाम	५७
सन्त-संगकी महिमा	६०
भगवन्नाममें शक्ति	६२
भजनानन्दी सन्त	६६
प्रवचन—५	६८
वास्तवमें छत्रपति कौन ?	६८
नाम और नामीकी महिमा	७१
नाम और रूपकी तुलना	७६
प्रवचन—६	७८
नाममें पाप-नाशकी शक्ति	८०
पापका बाप	८२
भजनमें दिखावा	८५
प्रह्लादपर सन्त-कृपा	८८
प्रवचन—७	९१
नामीके दो रूप	९१
ज्ञानी भक्त	९४
चार प्रकारके भक्त	९८
प्रवचन—८	१०७
उद्धारका सुगम उपाय	१०७
नाम-प्रेमी भक्त	११०
निर्गुण ब्रह्मसे नामकी श्रेष्ठता	११३
नामसे निर्गुण-सगुणकी सुलभता	११६
सगुणसे नामकी श्रेष्ठता	१२३
प्रवचन—९	१३०
तीन प्रकारके सखा	१३०
नामका प्रभाव	१४१
हनुमान्‌जीका सेवाभाव	१४५
कलियुगमें नाम-महिमा	१४९

═══ ★ ═══

॥ श्रीहरिः॥

प्रवचन—१

श्रीसीताराम-वन्दना

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १८)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज कथा प्रारम्भ करनेसे पहले सभीकी वन्दना करते हैं। इस दोहेमें श्रीसीतारामजीको नमस्कार करते हैं। इसके बाद नाम-वन्दना और नाम-महिमाको लगातार नौ दोहे और बहत्तर चौपाइयोंमें कहते हैं। श्रीगोस्वामीजी महाराजको यह नौ संख्या बहुत प्रिय लगती है। नौ संख्याको कितना ही गुणा किया जाय, तो उन अंकोंको जोड़ने पर नौ ही बचेंगे। जैसे, नौ संख्याको नौसे गुणा करनेपर इक्यासी होते हैं। इक्यासीके आठ और एक, इन दोनोंको जोड़नेपर फिर नौ हो जाते हैं। इस प्रकार कितनी ही लम्बी संख्या क्यों न हो जाय, पर अन्तमें नौ ही रहेंगे; क्योंकि यह संख्या पूर्ण है।

गोस्वामीजी महाराजको जहाँ-कहीं ज्यादा महिमा करनी होती है तो नौ तरहकी उपमा और नौ तरहके उदाहरण देते हैं। नौ संख्या आखिरी हद है, इससे बढ़कर कोई संख्या नहीं है। यह नौ संख्या अटल है।

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा ३४।४, ५)

रामजन्म तिथि बार सब जस त्रेता महँ भास।
तस इकतीसा महँ जुरो जोग लगन ग्रह रास॥

भगवान् श्रीरामने त्रेतायुगमें चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, मंगलवारके दिन शुभ मुहूर्तके समय अयोध्यामें अवतार लिया। भगवान्‌के अवतारके दिन जैसा शुभ मुहूर्त था, ठीक वैसा ही शुभ मुहूर्तका संयोग संवत् १६३१में भगवान्‌के अवतारके दिन बना। श्रीगोस्वामीजी महाराजने अयोध्यामें उसी दिन श्रीरामचरितमानस ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। जबतक ऐसा संयोग नहीं बना, तबतक वैसे शुभ मुहूर्तकी प्रतीक्षा करते रहे।

यहाँ अठारहवें दोहेमें श्रीसीतारामजीके चरणोंकी वन्दना करते हैं। सीतारामजीकी बहुत विलक्षणता है। **'जिन्हहि परम प्रिय खिन्न'** दुःखी आदमी किसीको प्यारा नहीं लगता। दीन-दुःखीको सब दुत्कारते हैं, पर सीतारामजीको जो दुःखी होता है, वह ज्यादा प्यारा लगता है, वह उनका परमप्रिय है, उसपर विशेष कृपा करते हैं। उन श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ।

श्रीसीतारामजी अलग-अलग नहीं हैं। इस बातको समझानेके लिये दो दृष्टान्त देते हैं। जैसे, गिरा-अरथ और जल-बीचि कहनेका तात्पर्य है कि वाणी और उसका अर्थ कहनेमें दो हैं, पर वास्तवमें दो नहीं, एक हैं। वाणीसे कुछ भी कहोगे तो उसका कुछ-न-कुछ अर्थ होगा ही और किसीको कुछ अर्थ समझाना हो तो वाणीसे ही कहा जायगा—ऐसे परस्पर अभिन्न हैं। इसी तरह जल होगा तो उसकी तरंग भी होगी। तरंग और जल कहनेमें दो हैं, पर जलसे तरंग या तरंगसे जल अलग नहीं है, एक ही है।

गिरा और बीचि—ये दोनों स्त्रीलिङ्ग पद हैं, अरथ और जल—ये

दोनों पुल्लिङ्ग पद हैं। ये दोनों दृष्टान्त सीता और रामकी परस्पर अभिन्नता बतानेके लिये दिये गये हैं। इनका उलट-पुलट करके प्रयोग किया है। पहले 'गिरा' स्त्रीलिङ्ग पद कहकर 'अरथ' पुल्लिङ्ग पद कहा, यह तो ठीक है; क्योंकि पहले सीता और उसके बाद राम हैं, पर दूसरे उदाहरणमें उलट दिया अर्थात् 'जल'* पुल्लिङ्ग पद पहले रखा और उसके साथ 'बीचि' स्त्रीलिंग पद बादमें रखा। इसका तात्पर्य 'रामसीता' हुआ। इस प्रकार कहनेसे दोनोंकी अभिन्नता सिद्ध होती है। 'सीताराम' सब लोग कहते हैं, पर 'रामसीता' ऐसा नहीं कहते हैं। जब भगवान्‌के प्रति विशेष प्रेम बढ़ता है, उस समय सीता और राम भिन्न-भिन्न नहीं दीखते। इस कारण किसको पहले कहें, किसको पीछे कहें—यह विचार नहीं रहता, तब ऐसा होता है। श्रीभरतजी महाराज जब चित्रकूट जा रहे हैं तो प्रयागमें प्रवेश करते समय कहते हैं—

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥

(मानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा २०३)

प्रेममें उमँग-उमँगकर रामसिय-रामसिय कहने लगते हैं। उस समय प्रेमकी अधिकताके कारण दोनोंकी एकताका अनुभव होता है। इसलिये चाहे श्रीसीताराम कहो—चाहे रामसीता कहो, ये दोनों अभिन्न हैं। ऐसे श्रीसीतारामजीकी वन्दना करते हैं। अब इससे आगे नाम महाराजकी वन्दना करके नौ दोहोंमें नाममहिमाका वर्णन करते हैं।

एक नाम-जप होता है और एक मन्त्र-जप होता है। 'राम' नाम

---

* 'जल' शब्द संस्कृत भाषाके अनुसार नपुंसकलिङ्ग है, पर हिन्दीमें 'जल' शब्द पुल्लिङ्ग माना गया है। हिन्दीमें नपुंसकलिङ्ग होता ही नहीं।

मन्त्र भी है और नाम भी है। नाममें सम्बोधन होता है तथा मन्त्रमें नमन और स्वाहा होता है। जैसे '**रामाय नमः**' यह मन्त्र है। इसका विधिसहित अनुष्ठान होता है और राम ! राम !! राम !!! ऐसे नाम लेकर केवल पुकार करते हैं। 'राम' नामकी पुकार विधिरहित होती है। इस प्रकार भगवान्‌को सम्बोधन करनेका तात्पर्य यह है कि हम भगवान्‌को पुकारें, जिससे भगवान्‌की दृष्टि हमारी तरफ खिंच जाय।

कैसा ही क्यों न जन नींद सोता
वो नाम लेते ही सुबोध होता।

जैसे, सोये हुए किसी व्यक्तिको पुकारें तो वह अपना नाम सुनते ही नींदसे जग जाता है, ऐसे ही राम ! राम !! राम !!! करनेसे रामजी हमारी तरफ खिंच जाते हैं। जैसे, एक बच्चा माँ-माँ पुकारता है तो माताओंका चित्त उस बच्चेकी तरफ आकृष्ट हो जाता है। जिनके छोटे बालक हैं, उन सबका एक बार तो उस बालककी तरफ चित्त खिंचेगा, पर उठकर वही माँ दौड़ेगी, जिसको वह बच्चा अपनी माँ मानता है। माँ नाम तो उन सबका ही है, जिनके बालक हैं। फिर वे सब क्यों नहीं दौड़तीं ? सब कैसे दौड़ें ! वह बालक तो अपनी माँको ही पुकारता है। दूसरी माताओंके कितने ही सुन्दर गहने हों, सुन्दर कपड़े हों, कितना ही अच्छा स्वभाव हो, पर उनको वह अपनी माँ नहीं मानता। वह तो अपनी माँको ही चाहता है, इसलिये उस बालककी माँ ही उसकी तरफ खिंचती है। ऐसे ही 'राम-राम' हम आर्त होकर पुकारें और भगवान्‌को ही अपना मानें तो भगवान् हमारी तरफ खिंच जायेंगे।

जब लग गज अपनो बल बरत्यो नेक सर्‌यो नहीं काम।
निरबल ह्वै बलराम पुकार्‌यो आयो आधे नाम॥

जैसे, गजराजने पूरा नाम भी उच्चारण नहीं किया, उसने केवल 'हे ना.....(थ)' आधा नाम लेकर पुकारा। उतनेमें भगवान्‌ने आकर रक्षा कर दी। शास्त्रीय विधियोंकी उतनी आवश्यकता नहीं है,

जितनी इस तरह आर्त होकर पुकारनेकी है। इसलिये आर्त होकर, दुःखी होकर, भगवान्‌को अपना मानकर पुकारें और केवल उनका ही भरोसा, उनकी ही आशा, उनका ही विश्वास रखें और सब तरफसे मन हटाकर उनका ही नाम लें और उनको ही पुकारें—हे राम ! राम !! राम !!! आर्तका भाव तेज होता है, इससे भगवान् उसकी तरफ खिंच जाते हैं और उसके सामने प्रकट हो जाते हैं। तभी तो भगवान् प्रह्लादके लिये खम्भेमेंसे प्रकट हो गये। भीतरका जो आर्त-भाव होता है, वही मुख्य होता है। 'राम' नाम उच्चारण करनेकी बड़ी भारी महिमा है। उस 'राम' नामका प्रकरण रामचरितमानसमें बड़े विलक्षण ढंगसे आया है।

नाम-वन्दना

बंदउँ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९।१)

नामकी वन्दना करते हुए श्रीगोस्वामीजी महाराज कहते हैं कि मैं रघुवंशमें श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीके उस 'राम' नामकी वन्दना करता हूँ, जो कृसानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् बीज है। बीजमें क्या होता है ? बीजमें सब गुण होते हैं। वृक्षके फलमें जो रस होता है, वह सब रस बीजमें ही होता है। बीजसे ही सारे वृक्षको तथा फलोंको रस मिलता है। अग्निवंशमें परशुरामजी, सूर्यवंशमें रामजी और चन्द्रवंशमें बलरामजी—इस प्रकार तीनों वंशोंमें ही भगवान्‌ने अवतार लिये। ये तीनों अवतार 'राम' नामवाले हैं, पर श्रीरघुनाथजी महाराजका जो 'राम' नाम है, वह इन सबका कारण है। मैं रघुनाथजी महाराजके उसी 'राम' नामकी वन्दना करता हूँ, जो अग्निका बीज 'र', सूर्यका बीज 'आ' और चन्द्रमाका बीज 'म' है। 'राम' नाममें 'र', 'आ' और 'म'—ये तीन

अवयव हैं। इन अवयवोंका वर्णन करनेके लिये कृसानु, भानु और हिमकर—ये तीन शब्द दिये हैं।

यहाँ ये तीनों शब्द बड़े विचित्र एवं विलक्षण रीतिसे दिये गये हैं। कृसानुमें 'ऋ', भानुमें 'आ' और हिमकर में 'म' है। 'कृसानु' शब्दमेंसे 'ऋ' को निकाल दें तो 'क्सानु' शब्द बचेगा, जिसका कोई अर्थ नहीं होगा। 'भानु' शब्दमेंसे 'आ' निकाल दें तो 'भ्नु' का भी कोई अर्थ नहीं होगा। ऐसे ही 'हिमकर' शब्दमेंसे 'म' को निकाल दें तो 'हिकर'का भी कोई अर्थ नहीं निकलेगा; अर्थात् कृसानु, भानु और हिमकर—ये तीनों मुर्देकी तरह हो जायेंगे; क्योंकि इनमेंसे 'राम' ही निकल गया। इनके साथ 'राम' नाम रहनेसे कृसानुमें 'कृ' का अर्थ करना, 'सानु' का अर्थ शिखर है, ऐसे ही 'भानु' में 'भा' नाम प्रकाशका है, 'नु' नाम निश्चयका है और 'हिमकर' में 'हिम' नाम बर्फका है और 'कर' नाम हाथका है।

इन तीनोंका हेतु 'राम' नाम ही है। इस प्रकार सब अक्षरोंमें 'राम' नाम प्राण है। कृसानु, भानु और हिमकर—इन तीनोंमेंसे 'राम' नाम निकाल देनेपर वे कुछ कामके नहीं रहते हैं, उनमें कुछ भी तथ्य नहीं रहता। यहाँ नामके तीनों अवयवोंको बतानेका तात्पर्य यह है कि 'राम' नाम जपनेसे साधकके पापोंका नाश होता है, अज्ञानका नाश होता है और अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो जाता है। अशान्ति, सन्ताप, जलन आदि मिटकर शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसा जो रघुनाथजी महाराजका 'राम' नाम है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ। अब आगे गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो।
अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९। २)

यह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेशमय है। विधि, हरि,

हर—सृष्टिमात्रकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली, ये तीन शक्तियाँ हैं। इनमें ब्रह्माजी सृष्टिकी रचना करते हैं, विष्णुभगवान् पालन करते हैं और शंकरभगवान् संहार करते हैं।

संसारमें 'राम' नामसे बढ़कर कुछ नहीं है। सब कुछ शक्ति इसमें भरी हुई है। इसलिये सन्तोंने कहा है—

'रामदास सुमिरण करो रिध सिध याके माँय।'

ऋद्धि-सिद्धि सब इसके भीतर भरी हुई है। विश्वास न हो तो रात-दिन जप करके देखो। सब काम हो जायगा, कोई काम बाकी नहीं रहेगा।

यह 'राम' नाम वेदोंके प्राणके समान है, शास्त्रोंका और वर्णमालाका भी प्राण है। प्रणवको वेदोंका प्राण माना गया है। प्रणव तीन मात्रा वाला 'ॐ' कार पहले-ही-पहले प्रकट हुआ, उससे त्रिपदा गायत्री बनी और उससे वेदत्रय बना। ऋक्, साम, यजुः—ये तीनों मुख्य वेद हैं। इन तीनोंका प्राकट्य गायत्रीसे, गायत्रीका प्राकट्य तीन मात्रावाले 'ॐ' कारसे और यह 'ॐ' कार—प्रणव सबसे पहले हुआ। इस प्रकार यह 'ॐ' कार (प्रणव) वेदोंका प्राण है।

यहाँपर 'राम' नामको वेदोंका प्राण कहनेमें तात्पर्य है कि 'राम' नामसे 'प्रणव' होता है। प्रणवमेंसे 'र' निकाल दो तो 'पणव' हो जायगा और 'पणव'का अर्थ ढोल हो जायगा। ऐसे ही 'ॐ' मेंसे 'म' निकालकर उच्चारण करो तो वह शोकका वाचक हो जायगा। प्रणवमें 'र' और 'ॐ'में 'म' कहना आवश्यक है। इसलिये यह 'राम' नाम वेदोंका प्राण भी है।

'अगुन अनूपम गुन निधान सो'— यह 'राम' नाम निर्गुण अर्थात् गुण रहित है। सत्त्व, रज और तमसे अतीत है, उपमारहित है, और गुणोंका भण्डार है, दया, क्षमा, सन्तोष आदि सद्गुणोंका खजाना है, नाम लेनेसे ये सभी आप-से-आप आ जाते हैं। यह 'राम' नाम सगुण और निर्गुण दोनोंका वाचक है। आगेके प्रकरणमें

आयेगा—

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।८)

यह 'राम' नाम सगुण और निर्गुण—दोनोंको जनानेवाला है। इसलिये सगुण उपासक भी 'राम' नाम जपते हैं और निर्गुण उपासक भी 'राम' नाम जपते हैं। सगुण-साकारके उपासक हों, चाहे निर्गुण-निराकारके उपासक हों। 'राम' नामका जप सबको करना चाहिये। यह दोनोंकी प्राप्ति करा देता है।

'राम' नाम अमृतके समान है; जैसे, बढ़िया भोजनमें घी और दूध मिला दो तो वह भोजन बहुत बढ़िया बन जाता है। ऐसे ही 'राम' नामको दूसरे साधनोंके साथ करो, चाहे केवल 'राम' नामका जप करो, यह हमें निहाल कर देगा।

'राम' नामके समान तो केवल 'राम' नाम ही है। यह सब साधनोंसे श्रेष्ठ है। नामके दस अपराधोंमें बताया गया है—**'धर्मान्तरैः साम्यम्'*** नामके साथ किसीकी उपमा दी जायगी तो वह नामापराध हो जायगा। मानो नाम अनुपम है। इसमें उपमा नहीं लग सकती। इसलिये 'नाम'को किसीके बराबर नहीं कह सकते।

भगवान् श्रीराम शबरीके आश्रमपर पधारे और शबरीको कहने लगे—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

(मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ३५।७)

---

* सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ हि धर्मान्तरैः
साम्यं नामजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

—'मैं तुझे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर।' नवधा भक्ति कहकर अन्तमें कहते हैं— **'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥** (मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ३६। ७) तेरेमें सब प्रकारकी भक्ति दृढ़ है।' शबरीको भक्तिके प्रकारोंका पता ही नहीं; परंतु नवधा भक्ति उसके भीतर आ गयी। किस प्रभावसे ? 'राम' नामके प्रभावसे ! ऐसी उसकी लगन लगी कि 'राम' नाम जपते हुए रामजीके आनेकी प्रतीक्षा निरन्तर करती ही रही। इस कारण ऋषि-मुनियोंको छोड़कर शबरीके आश्रमपर भगवान् खुद पधारते हैं।

'गुन निधान सो' यह 'नाम' गुणोंका खजाना है मानो 'राम' नाम लेनेसे कोई गुण बाकी नहीं रहता। बिना जाने ही उसमें सद्‌गुण, सदाचार अपने-आप आ जाते हैं।

'राम' नाम जपनेवाले जितने सन्त महात्मा हुए हैं। आप विचार करके देखो ! उनमें कितनी ऋद्धि-सिद्धि, कितनी अलौकिक विलक्षणता आ गयी थी ! 'राम' नाम जपमें अलौकिकता है, तब न उनमें आयी ? नहीं तो कहाँसे आती ? इसलिये यह 'राम' नाम गुणोंका खजाना है। यह सत्त्व, रज और तमसे रहित है और गुणोंके सहित भी है एवं व्यापक भी है। यहाँ इस प्रकार 'राम' नाम में 'र', 'आ' और 'म' इन तीन अक्षरोंकी महिमाका वर्णन हुआ और तीनोंकी महिमा कहकर उनकी विलक्षणता बतलायी। यहाँतक 'राम' नामके अवयवोंका एक प्रकरण हुआ। अब गोस्वामीजी 'राम' नामकी महिमा कहना प्रारम्भ करते हैं—

महामन्त्रकी महिमा

महामंत्र जोइ जपत महेसू ।
कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९। ३)

यह 'राम' नाम महामन्त्र है, जिसे 'महेश्वर'—भगवान् शंकर जपते हैं और उनके द्वारा यह 'राम' नाम-उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है।

'र', 'आ' और 'म'—इन तीन अक्षरोंके मिलनेसे यह 'राम' नाम तो हुआ 'महामन्त्र' और बाकी दूसरे सभी नाम हुए साधारण मन्त्र।

सप्तकोट्यो महामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः।
एक एव परो मन्त्रो 'राम' इत्यक्षरद्वयम्॥

सात करोड़ मन्त्र हैं, वे चित्तको भ्रमित करनेवाले हैं। यह दो अक्षरोंवाला 'राम' नाम परम मन्त्र है। यह सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ मंत्र है। सब मंत्र इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। कोई भी मन्त्र बाहर नहीं रहता। सब शक्तियाँ इसके अन्तर्गत हैं।

यह 'राम' नाम काशीमें मरनेवालोंकी मुक्तिका हेतु है। भगवान् शंकर मरनेवालोंके कानमें यह 'राम' नाम सुनाते हैं और इसको सुननेसे काशीमें उन जीवोंकी मुक्ति हो जाती है। एक सज्जन कह रहे थे कि काशीमें मरनेवालोंका दायाँ कान ऊँचा हो जाता है—ऐसा मैंने देखा है। मानो मरते समय दायें कानमें भगवान् शंकर 'राम' नाम मन्त्र देते हैं। इस विषयमें सालगरामजीने भी कहा है—

जग में जितेक जड़ जीव जाकी अन्त समय,
जम के जबर जोधा खबर लिये करे।
काशीपति विश्वनाथ वाराणसी वासिन की,
फाँसी यम नाशन को शासन दिये करे॥
मेरी प्रजा ह्वेके किम पे हैं काल दण्डत्रास,
सालग विचार महेश यही हिये करे।
तारककी भनक पिनाकी यातें प्रानिन के,
प्रानके पयान समय कानमें किये करे।

जब प्राणोंका प्रयाण होता है तो उस समय भगवान् शंकर उस प्राणीके कानमें 'राम' नाम सुनाते हैं। क्यों सुनाते हैं ? वे यह विचार करते हैं कि भगवान्‌से विमुख जीवोंकी खबर यमराज लेते हैं, वे सबको दण्ड देते हैं; परंतु मैं संसारभरका मालिक हूँ। लोग मुझे विश्वनाथ कहते

हैं और मेरे रहते हुए मेरी इस काशीपुरीमें आकर यमराज दण्ड दे तो यह ठीक नहीं है। अरे भाई ! किसीको दण्ड या पुरस्कार देना तो मालिकका काम है। राजाकी राजधानीमें बाहरसे दूसरा आकर ऐसा काम करे तो राजाकी पोल निकलती है न ! सारे संसारमें नहीं तो कम-से-कम वाराणसीमें जहाँ मैं बैठा हूँ, यहाँ आकर यमराज दखल दे—यह कैसे हो सकता है।

काशीमें 'वरुणा' और 'असी' दोनों नदियाँ गंगाजीमें आकर मिलती हैं। उनके बीचका क्षेत्र 'वाराणसी' है। इस क्षेत्रमें **'मण्डूकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति।'** मछली हो या मेढक हो या अन्य कोई जीव-जन्तु हों, आकाशमें रहनेवालें हों या जलमें रहनेवाले हों या थलमें रहनेवाले जीव हों, उनको भगवान् शंकर मुक्ति देते हैं। यह है काशीवासकी महिमा ! काशीकी महिमा बहुत विशेष मानी गयी है। यहाँ रहनेवाले यमराजकी फाँसीसे दूर हो जायँ, इसके लिये शंकरभगवान् हरदम सजग रहते हैं। मेरी प्रजाको कालका दण्ड न मिले—ऐसा विचार हृदयमें रखते हैं।

अध्यात्मरामायणमें भगवान् श्रीरामकी स्तुति करते हुए भगवान् शंकर कहते हैं—जीवोंकी मुक्तिके लिये आपका 'राम' नामरूपी जो स्तवन है, अन्त समयमें मैं इसे उन्हें सुना देता हूँ, जिससे उन जीवोंकी मुक्ति हो जाती है—**'अहं हि काश्यां.. दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥'**

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं॥

अन्त समयमें 'राम' कहनेसे वह फिर जन्मता-मरता नहीं। ऐसा 'राम' नाम है। भगवान्‌ने ऐसा मुक्तिका क्षेत्र खोल दिया। कोई भी अन्नका क्षेत्र खोले तो पासमें पूँजी चाहिये। बिना पूँजीके अन्न कैसे देगा ? भगवान् शंकर कहते हैं—'हमारे पास 'राम' नामकी पूँजी है। इससे जो चाहे मुक्ति ले लो।'

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।।

यह काशी भगवान् शंकरका मुक्ति-क्षेत्र है। यह 'राम' नामकी पूँजी ऐसी है कि कम होती ही नहीं। अनन्त जीवोंकी मुक्ति कर देनेपर भी इसमें कमी नहीं आती। आवे भी तो कहाँसे ! वह अपार है, असीम है। नामकी महिमा कहते-कहते गोस्वामीजी महाराज हद ही कर देते हैं। वे कहते हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई ।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६ । ८)

भगवान् श्रीराम भी नामका गुण नहीं गा सकते। इतने गुण 'राम' नाममें हैं। **'महामन्त्र जोइ जपत महेसू'**—इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि यह महामन्त्र इतना विलक्षण है कि महामन्त्र 'राम' नाम जपनेसे 'ईश' भी महेश हो गये। महामन्त्रका जप करनेसे आप भी महेशके समान हो सकते हैं। इसलिये बहिनों, माताओं एवं भाइयोंसे कहना है कि रात-दिन, उठते-बैठते, चलते-फिरते हरदम अपने तो 'राम' नाम लेते ही रहो। भगवान्का नाम है तो सीधा-सादा; परंतु इससे स्थिति बड़ी विलक्षण हो जाती है।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—२

भगवान् शंकरने 'राम' नामके प्रभावसे काशीमें मुक्तिका क्षेत्र खोल दिया और इसी महामन्त्रके जपसे ईशसे 'महेश' हो गये। अब आगे गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

महिमा जासु जान गनराऊ।
प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९।४)

सम्पूर्ण त्रिलोकीकी प्रदक्षिणा करके जो सबसे पहले आ जाय, वही सबसे पहले पूजनीय हो—देवताओंमें ऐसी शर्त होनेसे गणेशजी निराश हो गये, पर नारदजीके कहनेसे गणेशजीने 'राम' नाम पृथ्वीपर लिखकर उसकी परिक्रमा कर ली। इस कारण उनकी सबसे पहले परिक्रमा मानी गयी। नामकी ऐसी महिमा जाननेसे गणेशजी सर्वप्रथम पूजनीय हो गये। आगे गोस्वामीजी कहते हैं—

जान आदिकबि नाम प्रतापू।
भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९।५)

सबंसे पहले श्रीवाल्मीकिजीने 'रामायण' लिखी है, इसलिये वे 'आदिकवि' माने जाते हैं। उलटा नाम (मरा-मरा) जप करके वाल्मीकिजी एकदम शुद्ध हो गये। उनके विषयमें ऐसी बात सुनी है कि वे लुटेरे थे। रास्तेमें जो कोई मिलता, उसको लूट लेते और मार भी देते। एक बार संयोगवश देवर्षि उधर आ गये। उनको भी लूटना चाहा तो देवर्षिने कहा—'तुम क्यों लूट-मार करते हो? यह तो बड़ा पाप है।'

वह बोला—'मैं अकेला थोड़े ही हूँ, घरवाले सभी मेरी कमाई खाते हैं। सभी पापके भागीदार बनेंगे।' देवर्षिने कहा—'भाई, पाप करनेवालेको ही पाप लगता है। सुखके, पुण्यके, धनके भागी बननेको तो सभी तैयार हो जाते हैं; परंतु बदलेमें कोई भी पापका भागी बननेके लिये तैयार नहीं होगा। तू अपने माँ-बाप, स्त्री-बच्चोंसे पूछ तो आ।' वह अपने घर गया। उसके पूछनेपर माँ बोली—'तेरेको पाल-पोसकर बड़ा किया, अब भी तू हमें पाप ही देगा क्या?' उसने कहा—'माँ! मैं आप लोगोंके लिये ही तो पाप करता हूँ।' सब घरवाले बोले—'हम तो पापके भागीदार नहीं बनेंगे।'

तब वह जाकर देवर्षिके चरणोंमें गिर गया और बोला—'महाराज! मेरे पापका कोई भी भागीदार बननेको तैयार नहीं हैं।' देवर्षिने कहा—'भाई! तुम भजन करो, भगवान्‌का नाम लो', परंतु भयंकर पापी होनेके कारण मुँहसे प्रयास करनेपर भी 'राम' नाम उच्चारण नहीं कर सका। उसने कहा—'यह मरा, मरा, मरा। ऐसा मेरा अभ्यास है, इसलिये 'मरा'तो मैं कह सकता हूँ।' देवर्षिने कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही तुम कहो।' तो 'मरा-मरा' करने लगा। इस प्रकार उलटा नाम जपनेसे भी वे सिद्ध हो गये, महात्मा बन गये, आदिकवि बन गये। 'राम' नाम महामन्त्र है, उसे ठीक सुलटा जपनेसे तो पुण्य होता ही है, पर उलटे जपसे भी पुण्य होता है।

उलटा नामु जपत जगु जाना।
बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(मानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १९४। ८)

सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
जपि जेईं पिय संग भवानी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९। ६)

'राम' नाम सहस्रनामके समान है, भगवान् शंकरके इस वचनको सुनकर पार्वतीजी सदा उनके साथ 'राम' नाम जपती रहती हैं।

पद्मपुराणमें एक कथा आती है। पार्वतीजी सदा ही विष्णुसहस्रनामका पाठ करके ही भोजन किया करतीं। एक दिन भगवान् शंकर बोले—'पार्वती! आओ भोजन करें।' तब पार्वतीजी बोलीं—'महाराज! मेरा अभी सहस्रनामका पाठ बाकी है।' भगवान् शंकर बोले—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने॥

पद्मपुराणके उस विष्णुसहस्रनाममें यह श्लोक आया है। राम, राम, राम—ऐसे तीन बार कहनेसे पूर्णता हो जाती है। ऐसा जो 'राम' नाम है, हे वरानने! हे रमे! रामे मनोरमे, मैं सहस्रनामके तुल्य इस 'राम' नाममें ही रमण कर रहा हूँ। तुम भी उस 'राम' नामका उच्चारण करके भोजन कर लो। हर समय भगवान् शंकर राम, राम, राम, जप करते रहते हैं। पार्वतीजीने भी फिर 'राम' नाम ले लिया और भोजन कर लिया।

नारद-राम-संवाद

अरण्यकाण्डमें ऐसा वर्णन आया है—श्रीरामजी लक्ष्मणजीके सहित, सीताजीके वियोगमें घूम रहे थे। वे घूमते-घूमते पम्पा सरोवर पहुँच गये। तो नारदजीके मनमें बात आयी कि मेरे शापको स्वीकार करके भगवान् स्त्री-वियोगमें घूम रहे हैं। उन्होंने देखा कि अभी बड़ा सुन्दर मौका है, एकान्त है। इस समय जाकर पूछें, बात करें। नारदजीने भगवान्‌को ऐसा शाप दिया कि आपने मेरा विवाह नहीं होने दिया तो आप भी स्त्रीके लिये रोते फिरोगे। भगवान्‌ने शाप स्वीकार कर लिया, परंतु नारदजीका अहित नहीं होने दिया।

यहाँ नारदजीने पूछा—'महाराज! उस समय आपने मेरा विवाह क्यों नहीं होने दिया?' तो भगवान्‌ने कहा—'भैया! एक मेरे ज्ञानी

भक्त होते हैं और दूसरे छोटे 'दास' भक्त होते हैं; परंतु उन दासोंकी, प्यारे भक्तोंकी मैं रखवाली करता हूँ।'

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥

(मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ४३। ५, ८)

ज्ञानी भक्त बड़े बेटे हैं। अमानी भक्त छोटे बालकके समान हैं। जैसे, छोटे बालकका माँ विशेष ध्यान रखती है कि यह कहीं साँप, बिच्छू, काँटा न पकड़ ले, कहीं गिर न जाय। वह उसकी विशेष निगाह रखती है, ऐसे ही मैं अपने दासोंकी निगाह रखता हूँ। माँ प्यारसे बच्चेको खिलाती-पिलाती है, प्यार करती है, गोदमें लेती है। परंतु बच्चेको नुकसानवाली कोई बात नहीं करने देती। अपने मनकी बात न करने देनेसे बच्चा कभी-कभी क्या करता है कि गुस्सेमें आकर माँके स्तनको मुँहमें लेते समय काट लेता है, फिर भी माँ उसके मनकी बात नहीं होने देती। माँ इतनी हितैषिणी होती है कि उसका स्तन काटनेपर भी बालकपर स्नेह रखती है, गुस्सा नहीं करती। वह तो फिर भी दूध पिलाती है। वह उसकी परवाह नहीं करती और अहित नहीं होने देती।

इसी तरह भगवान्‌ने नारदजीके मनकी बात नहीं होने दी तो उन्होंने भगवान्‌को ही शाप दे दिया। छोटे बालक ही तो ठहरे! काट गये। फिर भी माँ प्यार करती है और थप्पड़ भी देती है तो प्यार भरे हाथसे देती है। माँ गुस्सा नहीं करती है कि काटता क्यों है! ऐसे ही पहले नारदजीने शाप तो दे दिया; परंतु फिर पश्चात्ताप करके बोले—'प्रभु! मेरा शाप व्यर्थ हो जाय। मेरी गलती हुई, मुझे माफ कर दो।' भगवान्‌ने कहा—'**मम इच्छा कह दीनदयाला**'—मेरी ऐसी ही इच्छा थी। भगवान् इस प्रकार कृपा करते हैं।

पम्पासरोवरपर भगवान्‌की वाणी सुनकर नारदजीको लगा कि भगवान् प्रसन्न हैं। अभी मौका है। तब बोले कि 'मुझे एक वर दीजिये।' भगवान् बोले—'कहो भाई ! क्या वरदान चाहते हो ?' नारदजीने कहा—

राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

(मानस, अरण्यकाण्ड, ४२। ८)

आपका जो नाम है, वह सब नामोंसे अधिक हो जाय और बधिकके समान पापरूपी पक्षियोंका नाश करनेवाला हो जाय। भगवान्‌के हजारों नाम हैं, उन नामोंकी गणना नहीं की जा सकती। **'हरि अनंत हरि कथा अनंता'** (मानस, बालकाण्ड, १४०। ५) भगवान् अनन्त हैं, भगवान्‌की कथा अनन्त है तो भगवान्‌के नाम सान्त (सीमित) कैसे हो जायेंगे ?

राम अनंत अनंत गुनानी।
जन्म कर्म अनंत नामानी ॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ५२। ३)

विष्णुसहस्रनाममें आया है—

'यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।'

भगवान्‌के गुण आदिको लेकर कई नाम आये हैं। उनका जप किया जाय तो भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, लीला आदि याद आयेंगे। भगवान्‌के नामोंसे भगवान्‌के चरित्र याद आते हैं। भगवान्‌के चरित्र अनन्त हैं। उन चरित्रोंको लेकर नाम भी अनन्त होंगे। गुणोंको लेकर जो नाम हैं, वे भी अनन्त होंगे। अनन्त नामोंमें सबसे मुख्य 'राम' नाम है। वह खास भगवान्‌का 'राम' नाम हमें मिल गया तो समझना चाहिये कि बहुत बड़ा काम हो गया।

शिव-पार्वतीका नाम-प्रेम

हरषे हेतु हेरि हर ही को।
किय भूषन तिय भूषन ती को॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९। ७)

'राम' नामके प्रति पार्वतीजीके हृदयकी ऐसी प्रीति देखकर भगवान् शंकर हर्षित हो गये और उन्होंने स्त्रियोंमें भूषणरूप (पतिव्रताओंमें शिरोमणि) पार्वतीजीको अपना भूषण बना लिया अर्थात् उन्हें अपने अङ्गमें धारण करके अर्धांगिनी बना लिया। किसी स्त्रीकी बड़ाई की जाय तो उसे 'सती' की उपमा देकर कहा जाता है कि यह बड़ी सती-साध्वी है। परंतु 'राम' नाममें हृदयकी प्रीति होनेसे वे पतिव्रताओंमें शिरोमणि हो गयीं। जितनी कन्याएँ हैं, वे सब-की-सब सती (पार्वती) जीका पूजन करती हैं कि जिससे हमें अच्छा वर मिले, अच्छा घर मिले, हम सुखी हो जायँ।

जगज्जननी जानकीजी भी पार्वतीजीका पूजन करती हैं। उनकी माँ सुनयनाजी कहती हैं—'जाओ बेटी! सतीका पूजन करो।' सीताजी सतीका पूजन करती हैं और अपने मनचाहा वर माँगती हैं। सतीका पूजन करनेसे श्रेष्ठ वर मिलता है। सती सब स्त्रियोंका गहना है। सतीका नाम ले तो पतिव्रता बन जाय, इतना उसका प्रभाव है। उस सतीको भगवान् शंकरने खुश होकर अपनी अर्धांगिनी बना लिया। आपने 'अर्द्धनारीश्वर' भगवान् शंकरका चित्र देखा होगा। एक तरफ आधी मूँछ है और दूसरी तरफ 'नथ' है। वाम भाग पार्वतीका शरीर और दाहिना भाग भगवान् शंकरका शरीर है।

एक कविने इस विचित्ररूपके विषयमें बड़ा सुन्दर लिखा है—

निपीय स्तनमेकं च मुहुरन्यं पयोधरम्।
मार्गन्तं बालमालोक्याश्वासयन्तौ हि दम्पती॥

बालक माँका स्तन चूँगता (पीता) है तो मुँहमें एक स्तनको

लेता है और दूसरेको टटोलकर हाथमें पकड़ लेता है कि कहीं कोई दूसरा लेकर पी न जाय, इसका दूध भी मैं ही पीऊँगा। इसी प्रकार गणेशजी भी ऐसे एक बार माँका एक स्तन पीने लगे और दूसरा स्तन टटोलने लगे, पर वह मिले कहाँ? उधर तो बाबाजी बैठे हैं, माँ तो है ही नहीं। अब वे दूसरा स्तन खोजते हैं दूध पीनेके लिये, तो माँने कहा—'बेटा! एक ही पी ले। दूसरा कहाँसे लाऊँ।' ऐसे शंकरभगवान् अर्द्धनारीश्वर बने हुए हैं।

भगवान् शंकरने 'राम' नाम-जप करनेवाली सती पार्वतीको अपने अङ्गका भूषण ही बना लिया। 'राम' नामपर उनका बहुत ज्यादा स्नेह है—ऐसा देखकर पार्वतीजीने पूछा—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनँग आराती॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १०८। ७)

'आप तो महाराज! रात-दिन आदरपूर्वक 'राम-राम-राम' जप कर रहे हैं। एक-एक नाम लेते-लेते उसमें आपकी श्रद्धा, प्रेम, आदर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। **'दिन राती'**—न रातका ख्याल है, न दिनका। वह नाम किसका है? वह 'राम' नाम क्या है महाराज?' ऐसा पार्वतीके पूछनेपर शिवजीने श्रीरामजीकी कथा सुनायी।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा ३५। ११)

पहले भगवान् श्रीशंकरने राम-कथाको रचकर अपने मनमें ही रखा। वे दूसरोंको सुनाना नहीं चाहते थे, पर फिर अवसर पाकर उन्होंने यह राम-कथा पार्वतीजीको सुनायी।

भगवान् शंकरका 'राम' नामपर इतना स्नेह है कि **'चिताभस्मालेपः'**— वे मुर्देकी भस्म अपने शरीरपर लगाते हैं। इस

विषयमें एक बात सुनी है—कोई एक आदमी मर गया, लोग उसे श्मशान ले जा रहे थे और 'राम-नाम सत् है'—ऐसा उच्चारण कर रहे थे। शंकरने देखा कि यह कोई भक्त है, जो इसके प्रभावसे ले जानेवाले 'राम' नाम बोल रहे हैं। बड़ी अच्छी बात है, वे उनके साथमें हो गये। 'राम' नामकी ध्वनि सुने तो 'राम' नामके प्रेमी साथ हो ही जायँ। जैसे—पैसोंकी बात सुनकर पैसोंके लोभी उधर खिंच जाते हैं, सोनेकी बात सुनते ही सोनेके लोभीके मनमें आती है कि हमें भी सोना मिले और गहना बनवायें, इसी प्रकार भगवान् शंकरका मन भी 'राम' नाम सुनकर उन लोगोंकी तरफ खिंच गया।

अब लोगोंने मुर्देको श्मशानमें ले जाकर जला दिया और पीछे जब अपने-अपने घर लौटने लगे तो भगवान् शंकरने सोचा—'क्या बात है ? ये आदमी तो वे-के-वे ही हैं; परंतु नाम कोई लेता ही नहीं !' उनके मनमें आया कि उस मुर्देमें ही करामात थी, उसके कारण ही ये सब लोग 'राम' नाम ले रहे थे। वह मुर्दा कितना पवित्र होगा ! भगवान् शंकरने श्मशानमें जाकर देखा, वह तो जलकर राख हो गया। इसलिये उन्होंने उस मुर्देकी भस्म अपने शरीरमें लगा ली और वहाँ ही रहने लगे। अतः राखमें 'रा' और मुर्देमें 'म' इस तरह 'राम' हो गया। 'राम' नाम उन्हें बहुत प्यारा लगता है। 'राम' नाम सुनकर वे खुश हो जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिये मुर्देकी राख अपने अंगोंमें लगाते हैं। किसी कविने कहा है—

रुचिर रकार बिन तज दी सती सी नार,
किनी नाहीं रति रुद्र पायके कलेश को।
गिरिजा भई है पुनि तप ते अपर्णा तबे,
कीनी अर्धंगा प्यारी लगी गिरिजेश को॥
विष्णु पदी गंगा तउ धूर्जटी धरि न सीस,
भागीरथी भई तब धारी है अशेष को।
बार बार करत रकार और मकार ध्वनि,
पूरण है प्यार राम-नाम पे महेश को॥

—सबसे श्रेष्ठ सती है, पर उनके नाममें 'स' और 'त' है, पर 'र' और 'म' तो है ही नहीं। इस कारण भगवान् शंकरने सतीको छोड़ दिया। वे सतीका त्याग कर देनेसे अकेले दुःख पा रहे हैं। उनका मन भी अकेले नहीं लगा। इस कारण काकभुशुण्डिजीके यहाँ हंस बनकर गये और उनसे 'रामचरित' की कथा सुनी। ऐसी बात आती है कि एक बार सतीने सीताजीका रूप धारण कर लिया था, इस कारण उन्होंने फिर सतीसे प्रेम नहीं किया और साथमें रहते हुए भी उन्हें अपने सामने आसन दिया, सदाकी तरह बायें भागमें आसन नहीं दिया। फिर सतीने जब देह-त्याग कर दिया तो वे उसके वियोगमें व्याकुल हो गये।

सतीने पर्वतराज हिमाचलके यहाँ ही जन्म लिया, और कोई देवता नहीं थे क्या? परंतु उनकी पुत्री होनेसे सतीको गिरिजा, पार्वती नाम मिला और तभी इन नामोंमें 'र' कार आया। इतनेपर भी भगवान् शंकर मुझे स्वीकार करेंगे या नहीं, क्या पता? इसलिये तपस्या करने लगी।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना।
उमहि नामु तब भयउ अपरना॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा ७४। ७)

जब पार्वतीने सूखे पत्ते खाने भी छोड़ दिये तब उसका नाम 'अपर्णा' हो गया। किसी तरहसे मेरे नाममें 'र' आ जाय। पार्वतीकी ऐसी प्रीति देखकर भगवान् शंकर इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें दूर रखना ही नहीं चाहते हैं—ऐसा विचार करके उन्हें अपने अंगमें ही मिला लिया—**'विष्णु पदी गंगा तोहु धूर्जटी धरि ना सीस पर'**— पृथ्वीपर लानेके लिये भगीरथने गङ्गाजीकी तपस्या की, उसके कारण गङ्गाजीका 'भागीरथी' नाम पड़ गया। भगवान् शंकरने गङ्गाजी (भागीरथी) को अपनी जटामें रमा लिया—**'जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरी-**

मूर्धनि'—जैसे कड़ाहमें पानी डालें तो वह उसमें ही घूमता रहता है, ऐसे ही भगवान् शंकरकी जटामें गङ्गा घूमने लगी। उनके मनमें था कि मेरे वेगको कौन रोक सकता है ! मैं उसे ले जाऊँ पाताल-में। भगवान् शंकरने उन्हें अपनी जटामें ही रख लिया। जटामें वे घूमती रहीं। भगीरथकी पीढ़ियाँ गुजर गयीं। उसने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की, तब उन्होंने थोड़ी-सी जटा खोली, उसमेंसे तीन धाराएँ निकलीं। एक स्वर्गमें गयी, एक पातालमें गयी और एक पृथ्वी लोकमें आयी, इस कारण इसका नाम 'त्रिपथगामिनी' पड़ा।

'राम' नाममें भगवान् शंकरका विशेष प्रेम है। नामके प्रभावसे ही पार्वतीको उन्होंने अपना भूषण बना लिया।

नाम प्रभाउ जान सिव नीको।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९।८)

वे नामके प्रभावको ठीकसे जानते हैं। समुद्रका मंथन किया गया, उसमेंसे सबसे पहले जहर निकला तो सब देवता-असुर घबरा गये। उन्होंने भगवान् शंकरको याद किया और कहा—'भोले बाबा ! दुनिया मर रही है, बचाओ !' उन्होंने 'राम' नामके सम्पुटमें उस हलाहल जहरको कण्ठमें रख लिया। 'रा' लिखकर बीचमें जहर रख लिया और ऊपर 'म' लिख दिया तो अमृतका काम कर दिया उस जहरने। जो स्पर्श करनेसे भी मार दे ऐसा हलाहल जहर। उससे भगवान् शंकर नीलकण्ठ हो गये। जहर तो अपना काम करे ही। बस, कण्ठमें ही उसको रोक लिया। जहर बाहर आ जाय तो मुँह कड़वा कर दे और भीतर चला जाय तो मार दे। ऐसे 'राम' नामने शिवजीको अमर बना दिया। अब आगे गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २०।२)

सुमिरन करनेमें 'राम' नाम कठिन नहीं है। 'रा' और 'म'—ये दोनों अक्षर उच्चारण करनेमें सुगम हैं; क्योंकि ये अक्षर अल्पप्राण हैं। जिनमें प्राण कम खर्च होते हैं, वे अक्षर अल्पप्राण कहे जाते हैं। 'र' का उच्चारण जितना सुगमतासे कर सकते हैं, उतना 'ह' का नहीं कर सकते; क्योंकि 'ह' महाप्राण है। जैसे ख, फ, छ, ठ, थ,—प्रत्येक वर्गका दूसरा और चौथा अक्षर महाप्राण है। पहला, तीसरा और पाँचवाँ अक्षर अल्पप्राण है। 'क' बहुत समयतक कह सकते हैं, पर 'ख' इतने समयतक नहीं कह सकते। बहुत जल्दी खतम हो जायेंगे प्राण; क्योंकि महाप्राण है वह। पाँचवाँ अक्षर ('ञ, म, ङ, ण, न')—अल्पप्राण है और **'यणश्चाल्पप्राणाः'** य, र, ल, व भी अल्पप्राण हैं। अल्पप्राणवाला अक्षर उच्चारण करनेमें सुगम होता है और उसका उच्चारण भी ज्यादा देर हो सकता है। महाप्राणवाले अक्षरमें बहुत जल्दी प्राण खतम हो जाते हैं। अतः अल्पप्राणवाले अक्षरोंके समान दूसरे नाम उतनी देरतक नहीं ले सकते। इस कारण 'राम' नाम अल्पप्राण होनेसे उच्चारण करनेमें सुगम है।

नाममें अरुचिका कारण

वाल्मीकिजीको अल्पप्राणवाला नाम भी क्यों नहीं आया ? कारण क्या था ? ध्यान दें ! 'राम' नाम उच्चारण करनेमें सुगम है; परंतु जिसके पाप अधिक हैं, उस पुरुषद्वारा नाम-उच्चारण कठिन हो जाता है। एक कहावत है—

मजाल क्या है जीव की, जो राम-नाम लेवे।
पाप देवे थाप की, जो मुण्डो फोर देवे॥

जिनका अल्प पुण्य होता है, वे 'राम' नाम ले नहीं सकते। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी आया है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

(७। २८)

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, वे ही दृढ़व्रत होकर भगवान्‌के भजनमें लग सकते हैं। 'राम' नामके विषयमें भी ऐसी ही बातें शास्त्रोंमें पढ़ते हैं, संतोंसे सुनते हैं। ऐसी ही हमने एक घटना सुनी है—

बाँकुड़ाकी बात है। एक सज्जन थे श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका। वे अपनी बीती घटना सुनाने लगे। एक बूढ़ा बंगाली सरोवरके किनारे मछलियाँ पकड़ रहा था। श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं श्रीबद्रीदासजीने उसे देखा और कहा—'यह बूढ़ा हो गया, बेचारा भजनमें लग जाय तो अच्छा है।' उससे जाकर कहा कि तुम भगवन्नाम-उच्चारण करो तो उसे 'राम' नाम आया नहीं। वह मेहनत करनेपर भी सही उच्चारण नहीं कर सका। कई नाम बतानेके बाद अन्तमें 'होरे-होरे' कहने लगा। इस नामका उससे उच्चारण हुआ और कोई नाम आया ही नहीं। उससे पूछा गया कि 'तुम्हें एक दिनमें कितने पैसे मिलते हैं?' उसने बताया कि इतनी मछलियाँ मारनेसे इतने पैसे मिलते हैं। तो उन्होंने कहा कि 'उतने पैसोंके चावल हम तुम्हें दे देंगे। तुम हमारी दूकानमें बैठकर दिनभर होरे-होरे (हरि-हरि) किया करो।' उसको किसी तरह ले गये दूकानपर। वह एक दिन तो बैठा। दूसरे दिन देरसे आया और तीसरे दिन आया ही नहीं। फिर दो-तीन दिन बाद जाकर देखा, वह उसी जगह धूपमें मछली पकड़ता हुआ मिला। उन्होंने उसे कहा कि 'तू वहाँ दूकानमें छायामें बैठा था। क्या तकलीफ थी? तुमको यहाँ जितना मिलता है, उतना अनाज दे देंगे, केवल दिनभर बैठा हरि-हरि कीर्तन किया कर।' उसने कहा—'मेरेसे यह नहीं होगा।' वह दूकानपर बैठ नहीं सका। ऐसी बीती हुई घटना बतायी। हमारे विश्वास हुआ कि बात तो ठीक है भाई! पापीका शुभ काममें

लगना कठिन होता है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी पूरब पाप ते हरि चर्चा न सुहात।
जैसे ज्वर के जोरसे भूख बिदा हो जात॥

जब ज्वर (बुखार) का जोर होता है तो अन्न अच्छा नहीं लगता। उसको अन्नमें भी गन्ध आती है। जैसे भीतरमें बुखारका जोर होता है तो अन्न अच्छा नहीं लगता, वैसे ही जिसके पापोंका जोर ज्यादा होता है, वह भजन कर नहीं सकता, सत्संगमें जा नहीं सकता।

इसलिये सज्जनो ! एक बातपर आप ध्यान दें। जो भाई सत्संगमें रुचि रखते हैं, सत्संगमें जाते हैं, नाम लेते हैं, जप करते हैं, उन पुरुषोंको मामूली नहीं समझना चाहिये। वे साधारण आदमी नहीं हैं। वे भगवान्‌का भजन करते हैं, शुद्ध हैं और भगवान्‌के कृपा-पात्र हैं। परंतु जो भगवान्‌की तरफ चलते हैं, उनको अपनी बहादुरी नहीं माननी चाहिये कि हम बड़े अच्छे हैं। हमें तो भगवान्‌की कृपा माननी चाहिये, जिससे हमें सत्संग, भजन-ध्यानका मौका मिलता है। हमें ऐसा समझना चाहिये कि ऐसे कलियुगके समयमें हमें भगवान्‌की बात सुननेको मिलती है, हम भगवान्‌का नाम लेते हैं, हमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।

जैसे नदीका प्रवाह समुद्रकी तरफ जा रहा है, ऐसे ही इस समय संसारका प्रवाह नरकोंकी तरफ बड़े जोरोंसे जा रहा है। पढ़ाईमें, रस्म-रिवाजमें, कानून-कायदोंमें, व्यापार आदि कार्योंमें जहाँ कहीं भी देखो, पापका बड़े जोरोंसे प्रवाह चल रहा है। गोस्वामीजीने वर्णन किया है—

कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

(मानस, बालकाण्ड, २७।४)

कलियुगमें ऐसा जोरोंसे पाप छा जायगा कि मनुष्योंका मन जलमें मछलीकी तरह पापोंमें रम जायगा अर्थात् जैसे मछलीको जलसे दूर

कर देनेपर वह घबरा जाती है, उसको पहले अगर यह समझमें आ जाय कि तुम्हें जलसे दूर कर देंगे तो वह घबरा जायगी; क्योंकि वह जलके बिना जी नहीं सकती, ऐसे ही **'पाप पयोनिधि'**— पापरूपी तो हुआ समुद्र और उसमें **'जन मन मीना'**— मनुष्योंका मन मछली हो गया।

आज अगर कहा जाय कि ब्लेक मत करो, झूठ-कपट मत करो, बेईमानी मत करो, न्यायसे काम करो तो कहते हैं, 'महाराज! झूठ-कपटके बिना आजके जमानेमें काम नहीं चलता। ईमानदारीसे अगर काम करें तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। हमारेसे यह नहीं होगा।' पापसे दूर करनेकी बात सुनते ही काँपते हैं। वे डरते हैं कि पाप अगर छोड़ देंगे तो गजब हो जायगा, फिर तो, हमारा निर्वाह होगा ही नहीं। हमारा तो झूठ-कपट-बेईमानीसे ही काम चलता है।

इन बातोंसे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि दुराचारी-पापी, अन्यायी मनुष्य भजनमें नहीं लग सकता। गीता तो कहती है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

सांगोपांग दुराचारी भी यदि पक्का विचार करके भजनमें लग जाय तो उसे मामूली आदमी नहीं समझना चाहिये। भगवान् कहते हैं—'उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय पक्का कर लिया।'

भगवान्‌ने गीतामें चार प्रकारके भक्त बताये हैं— **'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ'**— 'आर्त' और 'अर्थार्थी,' भक्त भगवान्‌का नाम लेते हैं। जिज्ञासु भी उनका नाम लेता है। परंतु ज्ञानी तो **'प्रभुहि बिसेषि पिआरा, 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'** —वह तो भगवान्‌की आत्मा ही है।

अर्थार्थी भक्त ध्रुव

संसारका आकर्षण रखनेवाले 'आर्त' और 'अर्थार्थी' भी भगवान्के ही भक्त होते हैं। परंतु धनके लिये भगवान्का नाम लेनेसे या कोई दुःख दूर करनेके लिये भगवान्का नाम लेनेसे उसे 'अर्थार्थी' या 'आर्त' भक्त नहीं कहा जाता। 'अर्थार्थी' और 'आर्त' भक्त तो वे कहलाते हैं, जो धनके लिये केवल भगवान्के ऊपर ही भरोसा रखते हैं। धन प्राप्त करेंगे तो केवल भगवान्से ही, दूसरे किसीसे नहीं—ऐसा उनका दृढ़ निश्चय होता है।

जैसे, ध्रुवजी महाराजको नारदजीने कहा कि 'तुम वापस घरपर चलो। हम राजासे कहकर तुम्हारा और तुम्हारी माँका प्रबन्ध करवा देंगे। तुम्हें राज्य भी दिलवा देंगे।' ध्रुवने जब इस बातको स्वीकार नहीं किया तो, उसे डराया कि देख! जंगलमें बाघ, चीते, सर्प आदि बड़े-बड़े भयंकर जन्तु हैं, वे तुझे खा जायेंगे, पर न तो वह डरा और न धनके लोभमें ही आया। ध्रुवजी तो नाम-जपमें लग ही गये, यद्यपि ध्रुवजीकी आरम्भमें शुद्ध भावना नहीं थी। उस समय उनके मनमें राज्यका लोभ था। इस विषयमें श्रीगोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ५)

ध्रुवजीने ग्लानिसे (विमाताके वचनोंसे दुःखी होकर सकामभावसे) 'हरि' नामका जप किया। विमाताने पिताकी गोदसे उतारकर धक्का देकर निकाल दिया कि 'जा तू इस गोदमें बैठने लायक नहीं है। तू उस अभागिनकी कोखसे जन्मा है, इसलिये राजाकी गोदमें बैठनेका अधिकारी नहीं है।' ध्रुव इस बातसे बड़ा दुःखी हुआ। ध्रुवने

माँसे पूछा तो उसने भी कहा—'तेरी छोटी माँने जो बात कही है, वह सच्ची है। तूने और मैंने—दोनोंने ही भजन नहीं किया। तभी तो यह दशा हुई है। नहीं तो हमारी ऐसी दशा क्यों होती!' ऐसा सुनकर वे भगवान्‌से ही राज्य लेनेकी इच्छाको लेकर भजनमें लग गये। नारदजीके प्रभोलन और भय दिखानेपर भी वे पीछे नहीं हटे, भजन करनेके लिये जंगलमें चल दिये; क्योंकि वे ध्रुव अर्थात् पक्के थे। ऐसे भक्तोंको 'अर्थार्थी' कहा जाता है।

आजकल भी लोग भगवान्‌से धन चाहते हैं, पर वे केवल भगवान्‌के भक्त नहीं हैं। साथ-साथ वे भक्त बनते हैं—झूठ, कपट और बेईमानीके। वे कहते हैं—'हे बेईमानी देवता! हे झूठ देवता! हे कपट देवता! हे ब्लैक देवता! तुम हमें निहाल करो। आपकी कृपासे ही हम जीयेंगे, और जीनेका कोई साधन है नहीं।' वे भी एक तरहसे अर्थार्थी भक्त हैं, पर हैं वे पापोंके भक्त, भगवान्‌के नहीं हैं। जो भगवान्‌का भक्त होगा, वह पाप क्यों करेगा! क्या पाप जितनी भी ताकत भगवान्‌में नहीं है!

पापसे छूटनेका उपाय

'पाप पयोनिधि जन मन मीना'—पहले हमारे समझमें यह बात नहीं आयी थी। पापमें मनुष्यका इतना मन कैसे लग जाता है? क्या बात है? परंतु आजकल देखते हैं तो कई जगह यह बात सुननेमें आती है कि बिना पाप-अन्याय किये, झूठ-कपट किये हम जी नहीं सकते। जीवनका आधार पापको मान लिया। ऐसे जो पापोंमें रचे-पचे हैं, उनसे कहा जाय कि 'तुम नाम-जप करो' तो बड़ा कठिन हो जायगा। पापीके मुखसे भगवान्‌का नाम नहीं आता। पाप अधिक होनेके कारण ऐसी दशा हो जाती है।

इस विषयमें मेरे मनमें एक बात आती है। आप भाई-बहन ध्यान

दें ! हम तो हिम्मत करके 'राम-राम' करेंगे ही—ऐसा पक्का निश्चय करके नाम-जपमें लग जाओ तो पाप ठहरेगा नहीं। ये दोनों साथमें नहीं रह सकते। पाप भाग जायगा। भगवान्‌के नामका आश्रय लेकर यह निश्चय करो कि उसका पाप नष्ट हो जाता है, जो दृढ़ होकर भजन करता है। तो हम भी दृढ़व्रत होकर भजन करेंगे। दृढ़तासे हम भजनमें ही लग जायेंगे। तो फिर पाप ठहरेगा नहीं, अशुद्धि टिकेगी नहीं। जैसे सूर्योदय होनेपर अमावस्याकी बड़ी काली रात भी ठहर नहीं सकती, ऐसे ही आपलोग कृपा करके रात-दिन 'राम' नाममें लग जाओ तो सब पाप नष्ट हो जायँगे।

एक सन्त थे, उनसे किसीने पूछा—'महाराज ! आप कहते हैं कि पाप मत करो। पाप तो हमसे छूटता नहीं; परंतु हमारेसे पाप छूट जाय—ऐसा कोई उपाय बतलाओ। पाप छोड़नेकी हमारे हिम्मत नहीं होती।' सन्तने कहा—'तुम रात-दिन 'राम-राम' जपमें ही लग जाओ।' **'पाप पयोनिधि जन मन मीना'**— ऐसे पापी लोगोंको भी यह उपाय सन्तने बताया। हमने तो परम्परासे सुना। उनसे इतना ही कहा गया कि तुम राम-राम करो। मैंने सोचा कि देखो, सन्तोंकी कितनी गहरी सूझ है, जो सीधा उपाय बता दिया कि राम-राममें लग जाओ। राम-राममें लगनेसे क्या होगा कि 'राम' नाम भीतरमें बैठ जायगा। अभी तो बाहरसे होता है।

प्रथम राम रसना सिवर, द्वितीय कण्ठ लगाय।
तृतीय हृदय ध्यान धर, चौथे नाभ मिलाय॥
अध मध उत्तम प्रिय घर ठानु, चौथे अति उत्तम अस्थानु।
ये चहुँ बिन देखे आसरमा, राम भगति को पावे मरमा॥

(नाम परचा)

ऐसे जब 'राम' नाम भीतर उतरेगा तो भीतर जानेपर वह सब काम कर लेगा। शुद्धि, पवित्रता, निर्मलता, भगवान्‌की भक्ति—जो आनी

चाहिये सब आ जायेगी। इसलिये गोस्वामीजी महाराजने बड़ी विचित्र बात लिखी—'**नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी।**' और कुछ नहीं तो जीभसे ही जपो। '**तज्जपस्तदर्थभावनम्**'— भगवान्‌के नामका जप करे और भीतर-ही-भीतर ध्यान होता रहे—उसका तो फिर कहना ही क्या है! जीभमात्रसे नाम जपनेसे योगी जाग जाता है। जो नामका जप करते हैं, जीभ-मात्रसे ही, वे भी ब्रह्माजीके प्रपञ्चसे वियुक्त होकर विरक्त सन्त हो जाते हैं। जीभमात्रसे जप करना है भी सुगम।

बहुतसे लोग कह देते हैं—'तुम नाम जपते हो तो मन लगता है कि नहीं लगता है? अगर मन नहीं लगता है तो कुछ नहीं, तुम्हारे कुछ फायदा नहीं—ऐसा कहनेवाले वे भाई भोले हैं, वे भूलमें हैं, इस बातको जानते ही नहीं; क्योंकि उन्होंने कभी नाम-जप करके देखा ही नहीं। पहले मन लगेगा, पीछे जप करेंगे—ऐसा कभी हुआ है? और होगा कभी? ऐसी सम्भावना है क्या? पहले मन लग जाय और पीछे 'राम-राम' करेंगे—ऐसा नहीं होता। नाम जपते-जपते ही नाम-महाराजकी कृपासे मन लग जाता है'**हरिसे लागा रहो भाई। तेरे बिगड़ी बात बन जाई, रामजीसे लागा रहो भाई ॥**' इसलिये नाम-महाराजकी शरण लेनी चाहिये। जीभसे ही 'राम-राम-राम' शुरू कर दो, मनकी परवाह मत करो। 'परवाह मत करो'—इसका अर्थ यह नहीं है कि मन मत लगाओ। इसका अर्थ यह है कि हमारा मन नहीं लगा, इससे घबराओ मत कि हमारा जप नहीं हुआ। यह बात नहीं है। जप तो हो ही गया, अपने तो जपते जाओ। हमने सुना है—

माला तो करमें फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवाँ तो चहुँ दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं ॥

'भजन होगा नहीं'—यह कहाँ लिखा है? यहाँ तो '**सुमिरन नाहिं**'— ऐसा लिखा है। सुमिरन नहीं होगा, यह बात ठीक है; क्योंकि '**मनवा तो चहुँ दिसि फिरे**' मन संसारमें घूमता है तो सुमिरन कैसे

होगा ? सुमिरन मनसे होता है; परंतु 'यह तो जप नाहिं' —कहाँ लिखा है ? जप तो हो ही गया। जीभ-मात्रसे भी अगर हो गया तो नाम-जप तो हो ही गया।

हमें एक सन्त मिले थे। वे कहते थे कि परमात्माके साथ आप किसी तरहसे ही अपना सम्बन्ध जोड़ लो। ज्ञान-पूर्वक जोड़ लो, और मन-बुद्धिपूर्वक जोड़ लो तब तो कहना ही क्या है ? और नहीं तो जीभसे ही जोड़ लो। केवल 'राम' नामका उच्चारण करके भी सम्बन्ध जोड़ लो। फिर सब काम ठीक हो जायगा। **'अनिच्छया हि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः'**—आग बिना मनके छू जायेंगे तो भी वह जलायेगी ही, ऐसे ही भगवान्‌का नाम किसी तरहसे ही लिया जाय—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २८। १)

इसका अर्थ उलटा नहीं लेना चाहिये कि हम कुभावसे ही नाम लें और मन लगावें ही नहीं। बेगारखाते ऐसे ही नाम लें—ऐसा नहीं। मन लगानेका उद्योग करो, सावधानी रखो, मनको भगवान्‌में लगाओ, भगवान्‌का चिन्तन करो, पर न हो सके तो घबराना बिलकुल नहीं चाहिये। मेरे कहनेका मतलब यह है कि मन नहीं लग सका तो ऐसा मत मानो कि हमारा नाम-जप निरर्थक चला गया। अभी मन न लगे तो परवाह मत करो; क्योंकि आपकी नीयत जब मन लगानेकी है तो मन लग जायगा। एक तो हम मनको लगाते ही नहीं और एक मन लगता नहीं—इन दोनों अवस्थाओंमें बड़ा अन्तर है। ऐसे दीखनेमें तो दोनोंकी एक-सी अवस्था ही दीखती है। कारण कि दोनों अवस्थाओंमें ही मन तो नहीं लगा। दोनोंकी यह अवस्था बराबर रही; परंतु बराबर होनेपर भी बड़ा भारी अन्तर है। जो लगाता ही नहीं,

उसका तो उद्योग भी नहीं है, उसके मन लगानेका विचार ही नहीं है। दूसरा व्यक्ति मनको भगवान्‌में लगाना चाहता है, पर लगता नहीं। भगवान् सबके हृदयकी बात देखते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २९।५)

भगवान् हृदयकी बात देखते हैं, कि यह मन लगाना चाहता है, पर मन नहीं लगा। तो महाराज! उसका बड़ा भारी पुण्य होगा। भगवान्‌पर उसका बड़ा असर पड़ेगा। वे सबकी नीयत देखते हैं। अपने तो मन लगानेका प्रयत्न करो, पर न लगे तो उसमें घबराओ मत और नाम लिये जाओ।

राम! राम!! राम!!!

——::०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन — ३

नाम-जपका अनुभव

'राम' नामकी वन्दनाका प्रकरण चल रहा है। इसमें 'राम' नामकी महिमाका वर्णन भी आया है। इसकी महिमा सुननेसे 'राम' नाममें रुचि हो सकती है, पर इसका माहात्म्य तो 'राम' नाम जपनेसे ही मिलता है। नाम-महिमा कहने और सुननेसे उसमें रुचि होती है और नाम-जप करनेसे अनुभव होता है, इसलिये बड़ी उपयोगी बात है। इसकी वास्तविकता जपनेसे ही समझमें आयेगी, पूरा पता उससे ही लगेगा। जैसे, भूखे आदमीको भोजनकी बात बतायी जाय तो उसकी रुचि विशेष हो जाती है। पर बिना भूखके भोजनमें उतना रस नहीं आता। जोरसे भूख लगती है, तब पता लगता है कि भोजन कितना बढ़िया है! वह रुचता है, जँचता भी है और पच भी जाता है। उस भोजनका रस बनता है, उससे शक्ति आती है। ऐसे ही रुचिपूर्वक नामका जप करनेसे ही नामका माहात्म्य समझमें आता है, इसलिये ज्यों-ज्यों अधिक नाम जपते हैं, त्यों-ही-त्यों उसका विशेष लाभ होता है।

जैसे, धन कमानेवालोंके पास धन ज्यादा बढ़ जाता है तो उनके धनका लोभ भी बढ़ता जाता है। परंतु अन्तमें वह पतन करता है, क्योंकि धन नाशवान् वस्तु है। मानो साधारण आदमीके धनका अभाव थोड़ा होता है। धनी आदमीके अभाव ज्यादा होता है। साधारण आदमीके सैकड़ोंका, धनीके हजारोंका, अधिक धनीके लाखोंका और

उससे भी बड़े धनीके करोड़ोंका घाटा होता है। वैसे ही भजन करनेवालोंके भी भजनकी जरूरत होती है। जो इसकी महिमा जानते हैं, उन्हें बहुत बड़े अभावका अनुभव होता है कि हमारे भजन बहुत कम हुआ। परंतु जो लोग भजन नहीं करते हैं, उन्हें पता ही नहीं, वे इसके माहात्म्यको जानते ही नहीं। परंतु वे ज्यों-ही अपनेमें कमी समझते हैं, त्यों-ही भजनका माहात्म्य समझमें आता है। ऐसे माहात्म्यको समझनेवालोंके लिये लिखा है कि नामके उच्चारणमात्रसे कल्याण हो जाय।

'भगवन्नाम कौमुदी' नामक एक ग्रंथ है। उसमें बड़े शास्त्रार्थ-दृष्टिसे विवेचना की गयी है। नामका उच्चारण करनेवाले नामके पात्र माने गये हैं। जैसे गजेन्द्रने आर्त होकर भगवान्‌का नाम लिया तो भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। आर्त होकर जो नाम लिया जाता है, उसका बहुत जल्दी महत्त्व दीखता है। ऐसे ही भावपूर्वक नाम लिया जाता है, उसका विलक्षण ही असर होता है। एक पदमें आता है—

कृष्ण नाम जब श्रवण सुने री मैं आली।
भूली री भवन हौं तो बावरी भयी री॥

जिन गोपिकाओंके हृदयमें भगवान्‌का प्रेम है, वे, उनका नाम सुननेसे ही पागल हो जाती हैं। पता ही नहीं कि स्वयं मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ! ऐसे ही भगवन्नामसे भी ऐसी दशा हो जाती है। 'कल्याण'के भूतपूर्व सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी नाम-निष्ठा अच्छी थी। कल्याण शुरू नहीं हुआ था, उस समयकी बात है। किसीने कह दिया—'राम नाम लेनेसे क्या होता है?' तो उन्होंने कहा—'कल्याण हो जाता है।' उसने कहा—'अर्थ समझे बिना क्या है? 'राम' नाम अंग्रेजीमें मेढा और भेड़ाका भी है'। तब उन्होंने जोशमें आकर कह दिया, 'राम- नामसे कल्याण होता है'। ऐसे जोशमें आकर कहनेसे उन्हें आठ पहरतक होश नहीं आया। खाना-पीना, टट्टी-पेशाब सब बन्द। इस बातसे उनकी माँजी बड़ी दुःखी हो गयीं कि हनुमानके क्या

हो गया ? ऐसे जो भगवान्‌का नाम लेता है, उसमें बहुत विलक्षणता आ जाती है।

जिसकी नाममें रुचि होती है, उसे पता लगता है कि नामकी महिमा क्या होती है ? दूसरेको क्या पता नाम क्या चीज है ? हरेक आदमी क्या समझे ? नाममें रुचि ज्यादा होती है जप करनेसे, भजन करनेसे और उसमें तल्लीन होनेसे। सन्त-महात्माओंकी वाणीमें जो बातें हैं, वे विलक्षण बातें स्वयं अनुभवमें आने लगती हैं; सन्तोंने अलग-अलग स्थानोंपर अपना अलग-अलग अनुभव लिखा है।

एक बहन थी। उसने अपने नाम-जपकी ऐसी बातें बतायीं, जो सन्तोंकी वाणीमें भी मिलती नहीं। उसने कहा कि नाम जपते-जपते सब शरीरमें ठण्डक पहुँचती है। सारे शरीरमें ठण्डा-ठण्डा झरना बहता है तथा एक प्रकारके मिठास और आनन्दकी प्राप्ति होती है। मैंने सन्तोंकी वाणी पढ़ी है, पर ऐसा वर्णन नहीं आता, जैसा उस बहनने अपना अनुभव बताया। ऐसे-ऐसे अलौकिक चमत्कार सन्त-महात्माओंने थोड़े-थोड़े ही लिखे हैं। वे कहाँतक लिखें ? जो अनुभव होता है, वो वर्णन करनेमें आता नहीं। वे खुद ही जानते हैं।

सो सुख जानइ मन अरु काना।
नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥

वह कहनेमें नहीं आता। आप इसमें लग जायँ। भाइयोंसे, बहनोंसे, सबसे मेरी प्रार्थना है कि आप नाम-जपमें लग जायँ। आप निहाल हो जायेंगे और दुनिया निहाल हो जायगी। सबपर असर पड़ेगा और आपका तो क्या कहें, जीवन धन्य हो जायगा। 'भगवन्नाम' की अपार महिमा है। गोस्वामीजी महाराज आगे वर्णन करते हैं—

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १९)

पहले 'राम' नामके अवयवोंका वर्णन हुआ फिर 'महामन्त्र' का वर्णन हुआ। अब दो अक्षरोंका वर्णन होता है। 'र' और 'म'—ये दो अक्षर हैं। जो भगवान्‌के प्यारे भक्त हैं, वे सालि (बढ़िया चावल) की खेती हैं और वर्षाऋतु श्रीरघुनाथजी महाराजकी भक्ति है। वर्षा ऋतुमें ही वर्षा खूब हुआ करती है। चावलोंकी खेती, बाजरा आदि अनाजोंकी खेतीसे भिन्न होती है। राजस्थानमें खेतमें यदि पानी पड़ा रहे तो घास सूख जाय, पर चावलके खेतमें हरदम पानी भरा ही रहता है। जिससे खेतोंमें मछलियाँ पैदा हो जाती हैं। सालिके चावल बढ़िया होते हैं। चावल जितने बढ़िया होते हैं, उतना ही पानी ज्यादा माँगते हैं। उनको पानी हरदम चाहिये।

'रा' और 'म'—ये दो श्रेष्ठ वर्ण हैं। ऐसे ही श्रावण और भाद्रपद इन दो मासोंकी वर्षा-ऋतु कही जाती है। श्रेष्ठ भक्तके यहाँ 'राम' नामरूपी वर्षाकी झड़ी लगी रहती है। आगे गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

आखर मधुर मनोहर दोऊ।
बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २०।१)

ये दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं। 'मधुर' कहनेका मतलब है कि रसनामें रस मिलता है। 'मनोहर' कहनेका तात्पर्य है कि मनको अपनी ओर खींच लेता है। जिन्होंने 'राम' नामका जप किया है, उनको इसका पता लगता है, और आदमी नहीं जान सकते। विलक्षण बात है कि 'राम-राम' करते-करते मुखमें मिठास पैदा होता है। जैसे, बढ़िया दूध हो और उसमें मिश्री पीसकर मिला दी जाय तो वह कैसा मीठा होता है उससे भी ज्यादा मिठास इसमें आने लगता है। 'राम' नाममें लग जाते हैं तो फिर इसमें अद्‌भुत रस आने लगता है। ऐसे ये दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं। '**बरन बिलोचन जन जिय जोऊ**'—ये

दोनों अक्षर वर्णमालाकी दो आँखें हैं। शरीरमें दो आँखें सबसे श्रेष्ठ मानी गयी हैं। आँखके बिना जैसे आदमी अन्धा होता है, ऐसे 'राम' नामके बिना वर्णमाला भी अन्धी है।

नाम जपते हुए बहुत विलक्षण अनुभव होने लगता है। छः कमलोंमें एक नाभिकमल है, उसकी पंखुड़ियोंमें भगवान्‌के नाम हैं, वे भी दीखने लग जाते हैं। आँखोंसे जैसे सब बाहरी ज्ञान होता है, ऐसे नाम-जपसे बड़े-बड़े शास्त्रोंका ज्ञान हो जाता है। जिन सन्तोंने पढ़ायी नहीं की, शास्त्र नहीं पढ़े, वेद नहीं पढ़े, उनकी वाणीमें भी वेदोंकी ऋचाएँ आती हैं। वेदोंमें जैसा लिखा है, वैसी बातें उनकी साखियोंमें, वाणियोंमें आती हैं। वेदोंका ज्ञान उनको कैसे हो गया ? 'राम' नाम महाराजसे। 'राम' नाम महाराज सब अक्षरोंकी आँख है। आँखोंसे दीखने लग जाता है, और विचित्र बातें दीखने लग जाती हैं।

श्रीरामदासजी और श्रीलालदासजी महाराज दोनोंकी मित्रता थी। उन दोनोंकी मित्रताकी कई बातें मैंने सुनी थी। एक बार एक माई भोजन लेकर जा रही थी तो उन दोनोंने आपसमें बात कही कि वह जो माई भोजन ला रही है, उसमें राबड़ी है, अमुक साग है, और ऐसी-ऐसी चीजें हैं। और उलटा कटोरा भी साथमें है। फिर जब देखा तो वैसी ही बात मिली। इस प्रकार लौकिक दृष्टिसे भी विशेषता आ जाती है। एकान्तमें भजन करते हुए उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि अमुक जगह अमुक बात हो रही है। इन बातोंको सन्त लोग प्रकट नहीं करते थे। ऋद्धि-सिद्धि आ जाती और कभी कुछ बात प्रकट हो जाती तो वे कहते कि चुप रहो, हल्ला मत करो, लोगोंको बताओ मत। अन्धेरेमें रातमें दीखने लग जाय—ऐसे चमत्कार होते हैं, यह तो मामूली चमत्कार है। विशेष बात यह है कि नामजपसे तत्त्वज्ञान हो जाता है। जो परमात्माका स्वरूप है, स्वयंका स्वरूप है, इन सबका अनुभव हो जाता है। यह मामूली बात है क्या ? लौकिक चमत्कार

दीख जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

'राम' नाममें अपार-अनन्त शक्ति भरी हुई है। इसलिये गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—'**बरन बिलोचन जन जिय जोऊ**—'भक्तोंके हृदयको जाननेके लिये ये नेत्र हैं।

तुलसीका प्रिय 'राम' नाम

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २० । २,३)

ये कहने, सुनने और स्मरण करनेमें बहुत ही अच्छे सुन्दर, और मधुर हैं। तुलसीदासजीको श्रीराम और लक्ष्मणके समान दोनों प्यारे हैं। 'राम, राम, राम.......' कहनेमें आनन्द आता है और 'राम, राम, राम.....' सुननेमें आनन्द आता है। मनसे याद करें तो आनन्द आता है। ऐसे 'राम' नामके ये दोनों अक्षर बड़े सुन्दर और श्रेष्ठ हैं। गोस्वामीजी महाराज इस प्रकार विलक्षण बात कह रहे हैं। मानो उनको कुछ भी होश नहीं है। 'राम' नाम कैसा है ? तो कहते हैं—'**राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥**' सुननेवालोंके सामने दृष्टान्त ऐसा दिया जाता है, जिसे सुननेवाले आसानीसे समझ सकें।

श्रीरामचरितमानसमें चार संवाद आये हैं—१. पार्वतीजी एवं शंकरभगवान्का, २. याज्ञवल्क्यजी और भरद्वाजजीका, ३. कागभुशुण्डिजी और गरुड़जीका तथा ४. सन्तों और गोस्वामीजी महाराजका संवाद। यहाँ गोस्वामीजी महाराज संतोंको नाम-महिमा सुनाते हुए कह रहे हैं कि ये दोनों अक्षर ऐसे सुन्दर और प्यारे हैं, जैसे तुलसीको राम और लखन प्यारे लगते हैं। रामचरितमानस समाप्त

हुई, तब रघुवंशी रामजी और उनके नाम—इन दोनोंके विषयमें एक बात कही है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा १३० ख)

दोनों उदाहरण ऐसे दिये, जिनको हरेक आदमी समझ सके और जिसमें हरेक आदमीका मन खिंचे। सिद्धान्त समझाना हो तो दृष्टान्त वही दिया जाता है, जो हरेक आदमीके अनुभवमें आता हो। परंतु यहाँ गोस्वामीजी कहते हैं—'**राम लखन सम प्रिय तुलसी के**'— राम-लक्ष्मणके समान मुझे प्यारे लगते हैं। हरेक आदमीको क्या पता कि तुलसीको राम और लक्ष्मण किस तरह प्यारे लगते हैं? राम-लक्ष्मण उसको भी प्यारे लगें, तब वह समझे कि 'राम' नाम कितना प्यारा है! इतने ऊँचे कवि होकर कैसा दृष्टान्त देते हैं! अब हम क्या समझें, तुलसीको कैसे प्यारे लगते हैं? तो कहते हैं—

'कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि' प्रिय जिमि दाम'—

जैसे कामीको स्त्री प्यारी लगती है और लोभीको दाम प्यारा लगता है, ऐसे मेरेको राम प्यारे लगें। '**तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम**'—गोस्वामीजी महाराजने दो नाम लिये। '**कामिहि नारि पिआरि जिमि**'—में लिया 'रघुनाथ' और '**लोभिहि प्रिय जिमि दाम**'में लिया 'राम' नाम। कामीको सुन्दररूप अच्छा लगता है और लोभीको दाम प्यारे लगते हैं। वह सुन्दरताकी ओर नहीं देखता। वह गिनती देखता है। उसको गिनती अच्छी लगती है। रघुवंशियोंके मालिक महाराजाधिराज श्रीराम विराजमान हैं, ऐसा उनका रूप और 'राम' नाम—ये दोनों प्यारे लगें अर्थात् भगवान्‌का स्वरूप और

भगवान्‌का नाम—ये दोनों प्यारे लगें। एक कवि ने कहा है—

सुवरण को ढूँढ़त फिरत कवि व्यभिचारी चोर।
चरण धरत धड़कत हियो नेक न भावत शोर॥

कवि, व्यभिचारी और चोर—ये तीनों ही 'सुवर्ण' ढूँढ़ते हैं, कवि तो सुवर्ण—अच्छे-अच्छे अक्षरोंको ढूँढ़ते हैं। व्यभिचारी सुन्दर स्वरूपको ढूँढ़ता है और चोर सोना ढूँढ़ता है। '**चरण धरत धड़कत हियो**'— कवि भी किसी श्लोकका चरण रखता है तो उसका हृदय धड़कता है। मानो उसके यह भाव आता है कि श्लोक बढ़िया लिखा गया या नहीं। श्लोकके चार चरण होते हैं। व्यभिचारी और चोरका भी चरण रखते हृदय धड़कता है कि कोई देख न ले। '**नेक न भावत शोर**'—न कविको हल्ला-गुल्ला सुहाता है, न व्यभिचारीको और न चोरको। इस तरह तीनों 'सुवर्ण' को ढूँढ़ते फिरते हैं।

'**कामिहि नारि पिआरि जिमि**'— इस उदाहरणसे श्रीरघुनाथजी महाराजका रूप लिया गया और '**लोभिहि प्रिय जिमि दाम**'— लोभीकी तरह मेरेको भगवान्‌का नाम प्यारा लगे। लोभीको सुन्दर रूप नहीं, प्रत्युत संख्या प्यारी लगती है। उसको एक रुपयेका नोट बढ़िया गड्डीमेंसे निकाल कर दे दो और पाँच या दसका फटा हुआ नोट दिखाओ और उससे पूछो कि दोनोंमेंसे कौन-सा लोगे? लोभी एक रुपयेका सुन्दर नोट नहीं लेगा, पुराना, मैला, फटा दस रुपयेका ही लेगा। एक रुपया सुन्दर है तो वह क्या करे? वह तो गिनती देखता है कि यह पाँचका है, यह दसका है। ऐसे ही गोस्वामीजी कहते हैं, सुन्दर रूप रामजीका प्यारा लगे और नामकी गिनती बढ़ाते ही चले जायें। '**जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई**'— नाम लोभीकी तरह लिया जाय।

यहाँ ये दो दृष्टान्त बतानेका तात्पर्य है कि इन दोपर ही लोग आकृष्ट होते हैं—**माधोजीसे मिलना कैसे होय। सबल बैरी बसे घट भीतर कनक कामिनी दोय** ॥ एक तो स्त्री और एक रुपयोंकी

गिनती— इन दोकी जगह क्या करें ? इनमें संसारकी सुन्दरताकी जगह तो श्रीरघुनाथजी महाराजका रूप बैठा दें और रुपयोंकी गिनतीकी जगह भगवान्‌के नामको बैठा दें। इस तरह दोनोंकी खाना-पूर्ति हो गयी न ! सुन्दरता भगवान्‌के रूपकी और गिनती उनके नामकी। इतना कहनेपर भी सन्तोष नहीं हुआ। फिर कहा—'**तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम**'— निरन्तर नहीं होगा तो गलती रह जायगी। सांसारिक रुपये हैं तो प्यारे और अच्छे भी लगते हैं परंतु जब इंक्वायरी आ जाती है, दो नम्बरके रुपये भीतर रखे हैं, इधर सिपाही आ जाते हैं, तो मनसे यह इच्छा होती है कि अभी रुपये नहीं होते तो अच्छे थे। रुपयोंका लोभ होनेपर भी वह रुपयोंको नहीं चाहता। उसी तरह भोगोंको भी निरन्तर नहीं चाहता है। गोस्वामीजीने दृष्टान्त देनेमें ध्यान रखा कि साथमें 'नहीं' न आ जाय कहीं। कामी और लोभीको रूप और दाम प्यारे तो लगते हैं, पर प्रियतामें कभी-कभी अन्तर भी पड़ जाता है। हमारे श्रीरघुनाथजीके रूप और नामकी प्रियतामें कहीं अन्तर नहीं पड़ जाय।

नाम-जपका चमत्कार

'**तज्जपस्तदर्थभावनम्**'—भगवान्‌के नामका जप होता रहे और मनमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका ध्यान होता रहे, मन खिंच जाय उधर 'राम' नाममें ही बस, उसके बाद आप-से-आप 'राम-राम' होता है। 'रोम-रोम उचरंदा है' फिर करना नहीं पड़ता। 'राम' नाम लेना नहीं पड़ता। इतना खिंच जाता है कि छुड़ाये नहीं छूटता।

बंगालमें चैतन्य महाप्रभु भगवान्‌के नामके बड़े प्रेमी हुए हैं। उनके यहाँ कोई एक भक्त था। वह '**हरे कृष्ण हरे कृष्ण**·····॥'निरन्तर जप करता रहता था। किसीने चैतन्य महाप्रभुसे जाकर कह दिया— 'महाराज ! यह तो टट्टी फिरता हुआ भी नाम जपता रहता है।'

जब उससे पूछा गया तो उसने कहा 'ऐसा होता तो है।' चैतन्य महाप्रभुने बुलाकर उससे कहा—'उस समय ख्याल रखा कर, बोला मत कर।' अब वह क्या करता ? टट्टी फिरता तो जीभको पकड़ लेता। फिर उसकी लोगोंने शिकायत की—'महाराज ! यह टट्टी जाते समय जीभको पकड़े रखता है।' महाप्रभुने कहा—'तू यह क्या करता है ?' तो उसने कहा—'महाराज ! मैं क्या करूँ, जीभ मानती ही नहीं, पर आपने कह दिया इसलिये आपकी आज्ञा-पालन करनेके लिये जीभको पकड़ लेता हूँ।' तब उन्होंने कहा कि 'तेरे लिये किसी अवस्थामें नाम जपनेमें कोई दोष नहीं है, पर जीभ मत पकड़ा कर।' इस प्रकार जिसको भगवन्नाममें रस आता है, वही जानता है कि नाममें कितनी विलक्षणता है, क्या अलौकिकता है ! लोगोंकी शिकायत होती है कि मन लगता नहीं, जप होता नहीं। पर जो हरदम ही नाम जपते हैं रातमें, दिनमें, उनके हरदम ही नाम-जप होता रहता है।

ऐसे ही अर्जुनकी बात आती है। अर्जुनके सोते समय 'कृष्ण-कृष्ण' नाम उच्चारण होता रहता था। इसी कारण एक बार अर्जुन जब सो रहे थे तो वहाँ नारदजी, शंकरजी, ब्रह्माजी सब आ गये। बड़े-बड़े सन्त इकट्ठे हो गये। भगवान् भी आ गये। अर्जुनके रोम-रोमसे नामोच्चारण हो रहा था। **'सहजाँ नाम सिवरंदा है'**— मुखसे ही नहीं, रोम-रोमसे भगवन्नाम उच्चारण होता है।

गोरखपुरके पास ही बरहज गाँवमें एक परमहंसजी महाराज रहा करते थे। उनके शिष्यका नाम श्रीराघवदासजी था। वे उत्तरप्रदेशके गांधी कहे जाते थे। उन परमहंसजी महाराजके शरीरको छुआ जाता तो 'ॐ' का उच्चारण होता। एक बार पहलवान् राममूर्तिजी उनसे मिलनेके लिये गये। परमहंस बाबाके पैरकी अँगुली व अँगूठेसे जप हो रहा था। उन्होंने पहलवान्से कहा—अँगूठेको हिलनेसे रोको। परंतु वे अँगूठेको रोक नहीं सके। तो कहा कि 'तुम्हारेमें जितना बल है। उससे ज्यादा

बल तो बाबाके एक अँगूठेमें है।' नाम-महाराजका कितना विलक्षण प्रभाव है ! वह प्रभाव आदरप्रेमपूर्वक जपनेवालोंके सामने प्रकट होता है, बाकी दूसरे क्या जानें !

'लोक लाहु परलोक निबाहू'—'राम' नाम इस लोक और परलोकमें सब जगह काम देता है। इसलिये गोस्वामीजी कहते हैं—**'मेरे तो माँ अरु बाप दोउ आखर'**। 'र' और 'म'—ये मेरे माँ-बाप हैं। संसारमें माता-पिताके समान रक्षा करनेवाला, पालन करनेवाला, हित करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं कि हमारे तो दोनों अक्षर माता-पिता हैं, हमारा पालन करनेवाले हैं—

'र' रो पिता, माता 'म' मो है दोनों का जीव।
रामदास कर बन्दगी तुरत मिलावे पीव॥

जो माँ-बापका भक्त होता है, उसपर भगवान् राजी हो ही जाते हैं। 'राम' नामसे भगवान् मिल जायँ, दर्शन दे दें। लोकमें, परलोकमें सब जगह ही वह निर्वाह करनेवाला है। लोकमें जो चाहिये, वह देनेवाला चिन्तामणि है और परलोकमें भगवद्दर्शन करानेवाला है। कई ऐसे आदमी देखे हैं, जो दिनभर माँगते रहते हैं, घूमते-फिरते हैं; परंतु उनका पेट नहीं भरता। ऐसी दशामें वे भी अगर एकान्तमें 'राम'-'राम' करने लग जायँ तो प्रत्यक्षमें उनके भी ठाट लग जायगा। अन्न, जल, कपड़े आदि किसी चीजकी कमी रहेगी नहीं। अब नामजप करते ही नहीं तो उसका क्या किया जाय ? नामजप करके देखा जाय तो भाग्य खुल जाता है, विलक्षण बात हो जाती है। जीते जी भाग्यमें विशेष परिवर्तन भगवन्नामसे होता है, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं है। साधारण आदमी भी नाम-जपमें लग जाता है तो लोगोंपर विशेष असर पड़ता है।

भजन करे पातालमें परगट होत अकास।
दाबी दूबी नहि दबे कस्तूरी की बास॥

कस्तूरीको सौगन्ध दिला दें कि तुम सुगन्धि मत फैलाओ तो क्या वह रुक जायगी? सुगन्धि तो फैल ही जायगी। इस तरहसे कोई चुपचाप भी भजन करे और किसीको पता ही न लगने दे तो भी महाराज यह तो प्रकट हो ही जाता है। उसकी विलक्षणता, अलौकिकता दीखने लगती है। लोगोंपर असर पड़ने लगता है; क्योंकि भगवान्‌का नाम है ही ऐसा विलक्षण। इसलिये लोक और परलोक दोनोंमें लाभ होता है। साधारण घरका बालक साधु होकर भजनमें तत्परतासे लग जाता है तो वह सन्त-महात्मा कहलाने लगता है। बड़े चमत्कार उसके द्वारा हो जाते हैं, जिसको पहले कोई पूछता ही नहीं था। बात क्या है? यह सब भगवन्नामकी महिमा है।

बरनत बरन प्रीति बिलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

(मानस, बालकाण्ड, २०।४)

इन 'र', 'आ' और 'म' का वर्णन किया जाय तो ये अलग-अलग दीखते हैं। मानो ये तीनों वर्ण कृशानु, भानु और हिमकरके बीज-अक्षर हैं। वृक्षमें बीजसे ही शक्ति आती है। इसी प्रकार अग्नि, सूर्य और चन्द्रमामें जो शक्ति है, वह 'राम' नामसे ही आयी है।

यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५।१२)

गीतामें भगवान् कहते हैं कि इनमें जो विशेषता है, वह मेरी ही है। नाम और नामीमें अभेद है। इनके उच्चारण, अर्थ और फलमें भिन्नता दीखती है। वर्णन करनेमें ये अलग-अलग दीखते हैं। प्रीति भी अलग-अलग दीखती है; परंतु 'र' और 'म' दोनों ब्रह्म और जीवके समान सहज संघाती हैं अर्थात् स्वतः सदा एक साथ रहनेवाले साथी हैं, सदा एकरूप और एकरस रहनेवाले हैं।

ब्रह्म और जीवका अर्थ क्या है ? '**ममैवांशः** (गीता १५ । ७) यह जीव परमात्माका साक्षात् अंश है और यह परमात्मा (ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है। '**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।**' (गीता १४ । २) मेरी साधर्म्यताको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जैसे भगवान् हैं, ऐसे ही भक्त हो जाते हैं। इन दोनोंकी सहधर्मता हो जाती है। तुलसीदासजीने भी कहा है—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

(मानस, किष्किंधाकाण्ड, दोहा १२ । २)

स्वारथ मीत सकल जग माहीं ।
सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ४७ । ६)

प्रायः सब लोग स्वार्थसे ही प्रेम करनेवाले हैं; परंतु '**हेतु रहित जग जुग उपकारी**'—दो बिना स्वार्थके हित करनेवाले हैं। '**तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी**'—एक आप और दूसरे आपके प्यारे भक्त। ये बिना स्वार्थ, बिना मतलबके दुनियामात्रका हित करनेवाले हैं। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—मेरेको सब प्राणियोंका सुहृद् जाननेसे शान्ति मिलती है (५ । २९) । '**सुहृदः सर्वदेहिनाम्**'— भगवान्‌के जो भक्त होते हैं, वे प्राणी-मात्रके सुहृद् होते हैं। दुनियाका हित कैसे हो—ऐसा भगवान्‌का भाव निरन्तर रहता है। इस तरह भगवान्‌के प्यारे भक्तोंके हृदयमें भी दुनियामात्रके हितका भाव निवास करता है।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई ।
मंद करत जो करइ भलाई ॥

(मानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ४१ । ७)

अपने साथ बुरा बर्ताव करनेवालोंका भी सन्त भला ही करते हैं। इसलिये नीतिमें भी आया है—'**निष्पीडितोऽपि मधुरं वमति इक्षुदण्डः**'—

ऊखको कोल्हूमें पेरा जाय तो भी वह मीठा ही मीठा रस सबको देता है। ऐसा नहीं कि इतना तंग करता है तो कड़वा बन जाऊँ! वह मीठा ही निकलता है; क्योंकि उसमें भरा हुआ रस मीठा ही है। ऐसे ही सन्त-महात्माओंको दुःख दें तो भी वे भलाई ही करते हैं; क्योंकि उनमें भलाई ही भलाई भरी हुई है, यह विलक्षण बात है कि भगवान् स्वाभाविक ही सबका हित करनेवाले हैं। भगवान्‌का भजन करनेसे, मन लगानेसे, ध्यान करनेसे, भगवान्‌का नाम लेनेसे भजन करने वालोंमें भी भगवान्‌के गुण आ जाते हैं अर्थात् वे विशेष प्रभावशाली हो जाते हैं। नाम-जपसे उनमें भी विलक्षणता आ जाती है।

नर नारायन सरिस सुभ्राता।
जग पालक बिसेषि जन त्राता॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २० । ५)

ये दोनों अक्षर नर-नारायणके समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत्‌का पालन और विशेषरूपसे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं। जैसे नर और नारायण दोनों तपस्या करते हैं और साथमें ही रहते हैं। लोगोंके सुखके लिये, आनन्दके लिये और वे सुख-शान्तिसे रहें, इसी बातको लेकर बदरिकाश्रम (उत्तराखण्ड) में तपस्या करते हैं। इसी तरहसे नाम महाराज भी सबकी रक्षा करते हैं। ये दोनों अक्षर भाई-भाई हैं। '**जग पालक बिसेषि जन त्राता**'—मात्र जगत्‌का पालन करते हैं और जो भगवान्‌के भक्त होते हैं, उनकी विशेषतासे रक्षा करते हैं। ऐसा ही संतोंका स्वभाव होता है और दुष्टोंका स्वभाव कैसा होता है—

बयरु अकारन सब काहू सों।
जो कर हित अनहित ताहू सों॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, ३९ । ६)

हित करनेवालेके साथ भी वे विरोध करते हैं, पर भगवान्‌के भक्त सबका हित करते हैं और अपना अहित करनेवालोंपर वे विशेष कृपा करते हैं।

धनवत्ताका अभिमान

एक तो धनी आदमीका और दूसरे ज्यादा पढ़े-लिखे विद्वान्‌का उद्धार होना कठिन होता है। धनी आदमीके धनका और विद्वान्‌के विद्याका अभिमान आ जाता है। अभिमान सब तरहसे नुकसान करनेवाला होता है—'**अभिमानद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च ।**' श्रीगोस्वामीजी महाराजने भी कहा है—

संसृत मूल सूलप्रद नाना ।
सकल सोक दायक अभिमाना ॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, ७४ । ६)

जन्म-मरणका मूल कारण अभिमान ही है। 'नाना सूलप्रद'—एक तरहकी सूल नहीं, तरह-तरहकी आफत अभिमानसे होती है। धनका एवं विद्याका अभिमान होनेपर मनुष्य किसीको गिनता नहीं। धन आनेपर वह सोचता है कि बड़े-बड़े पण्डित एवं महात्मा हमारे यहाँ आते हैं और भिक्षा लेते हैं—यह गर्मी उनके चढ़ जाती है, जो भगवान्‌की भक्ति नहीं जाग्रत होने देती। हृदय कठोर हो जाता है। वैसे यह कोई नियम नहीं है, पर प्रायः ऐसी बात देखनेमें आती है। एक कविने विचित्र बात कही है—

अन्ध रमा सम्बन्ध ते होत न अचरज कोय ।
कमल नयन नारायण हु रहे सर्प में सोय ॥

लक्ष्मीजीके सम्बन्धसे मनुष्य अन्धा हो जाय, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भगवान् पुण्डरीकाक्षकी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें हैं। ऐसी आँखोंवाले भी जाकर सर्पपर सो गये। आँखें जिसके हों, वह साँपपर पैर भी नहीं रखता और वे भगवान् जाकर सो गये सर्पपर। क्या कारण? लक्ष्मीका सम्बन्ध है। लक्ष्मीके सम्बन्धसे बड़ी-बड़ी आँखोंवाले भी अन्धे हो जाते हैं। '**अन्ध मूक बहरो अवश कमला**

नर ही करे'—लक्ष्मी जब आती है तो मनुष्यको अन्धा, बहरा और गूँगा बना देती है। यह इतने आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो इस बातका है—**'विष अनुजा मारत न, बड़ आवत अचरज एह'**—जहर खानेसे मनुष्य मर जाय, पर यह विषकी छोटी बहन होनेपर भी मारती नहीं है। यह उसकी कृपा है, नहीं तो लक्ष्मीके आनेसे मनुष्य मर जाय; क्योंकि जहरकी वह बहन ही तो है। धनके अभिमानके विषयमें कविने विचित्र बात कही है—

हाकम जिन धन होय विधि षट् मेख बनावे।
दोय श्रवणमें दिये शबद नहीं ताहि सुनावे॥
एक मेख मुख मांय विपति किणरी नहीं बूझे।
दोय मेख चख मांय सबल निरबल नहीं बूझे॥
पद हीन होय हाकम परो छठी मेख तल द्वार में।
पांचों ही मेख छिटके परी सरल भये संसारमें॥

जब आदमी बड़ा हो जाता है, तो वह किसीकी कुछ सुनता नहीं, उसको दीखता नहीं और वह गूँगा हो जाता है। उसके छः प्रकारकी मेख लग जाती है। दो मेख कानमें लगती हैं, जिससे शब्द सुनायी नहीं देता। कोई पुकार करे कि 'अन्नदाता! हमारे अमुक आफत आ गयी, आप कृपा करो, हमारे ऐसा बड़ा दुःख है।' कानसे बात सुननेमें आनी चाहिये न? परंतु वह सुनवायी करता ही नहीं, कानमें मेख लग गयी, अब सुने कहाँसे? ऐसे ही दो और मेख आँखोंमें लगनेसे **'सबल निरबल नहीं बूझे'**। 'दे दो दण्ड इसको, जुर्माना लगा दो इतना'! 'अरे भाई! कितना गरीब है, कैसे दे सकेगा?' 'कैद कर दो'—शब्दमात्र कहते क्या जोर आया? और एक मेख **'मुख मांय विपति किणरी नहीं बूझे'**—दुःखी हो कि सुखी, क्या हो, तुम्हारी दशा कैसी है? तुम्हारे कोई तकलीफ तो नहीं है—ऐसी बात पूछता

ही नहीं। ये मेखें खुल जाती हैं फिर '**सरल भये संसारमें**'—तब वह सीधा सरल हो जाता है।

संतद्वारा सेठको शिक्षा

एक सेठकी बात सुनी। वह सेठ बहुत धनी था। वह सुबह जल्दी उठकर नदीमें स्नान करके घर आकर नित्य-नियम करता था। ऐसे वह रोजाना नहाने नदीपर आता था। एक बार एक अच्छे संत विचरते हुए वहाँ घाटपर आ गये। उन्होंने कहा 'सेठ ! राम-राम !' वह बोला नहीं तो फिर बोले-'सेठ !राम-राम !' ऐसे दो-तीन बार बोलनेपर भी सेठ 'राम-राम' नहीं बोला। सेठने समझा कि कोई मँगता है। इसलिये कहने लगा— 'हट ! हट ! चल, हट यहाँसे।' संतने देखा कि अभिमान बहुत बढ़ गया है, भगवान्‌का नाम भी नहीं लेता। मैं तो भगवान्‌का नाम लेता हूँ और यह हट कहता है।

इन धनी आदमियोंके वहम रहता है कि हमारेसे कोई कुछ माँग लेगा, कुछ ले लेगा। इसलिये धनी लोग सबसे डरते रहते हैं। वे गरीबसे, साधुसे, ब्राह्मणसे, राज्यसे, चोरोंसे, डाकुओंसे डरते हैं। अपने बेटा-पोता ज्यादा हो जायेंगे तो धनका बँटवारा हो जायगा—ऐसे भी डर लगता है उन्हें।

संतने सोचा कि इसे ठीक करना है। तो वे वैसे ही सेठ बन गये और सेठ बनकर घरपर चले गये। दरवानने कहा कि 'आज आप जल्दी कैसे आ गये ?' तो उन्होंने कहा कि 'एक बहुरूपिया मेरा रूप धरके वहाँ आ गया था, मैंने समझा कि वह घरपर जाकर कोई गड़बड़ी नहीं कर दे। इसलिये मैं जल्दी आ गया। तुम सावधानी रखना, वह आ जाय तो उसे भीतर मत आने देना।'

सेठ घरपर जैसा नित्य-नियम करता था, वैसे ही वे सेठ बने हुए संत भजन-पाठ करने लग गये। अब वह सेठ सदाकी तरह धोती

और लोटा लिये आया तो दरवानने रोक दिया। 'कहाँ जाते हो ? हटो यहाँसे !' सेठ बोला—'तूने भाँग पी ली है क्या ? नशा आ गया है क्या ? क्या बात है ? तू नौकर है मेरा, और मालिक बनता है।' दरवानने कहा—'हट यहाँसे, नहीं जाने दूँगा भीतर।' सेठने छोरोंको आवाज दी—'आज इसको क्या हो गया ?' तो उन्होंने कहा—'बाहर जाओ, भीतर मत आना।' बेटे भी ऐसे ही कहने लगे। जिसको पूछे, वे ही धक्का दें। सेठने देखा कि क्या तमाशा हुआ भाई ? मुझे दरवाजेके भीतर भी नहीं जाने देते हैं। बेचारा इधर-उधर घूमने लगा।

अब क्या करें ? उसकी कहीं चली नहीं तो उसने राज्यमें जाकर रिपोर्ट दी कि इस तरह आफत आ गयी। वे सेठ राज्यके बड़े मान्य आदमी थे। राजाने उनको जब इस हालतमें देखा तो कहा 'आज क्या बात है ? लोटा, धोती लिये कैसे आये हो ?' तो वह बोला—'कैसे-कैसे क्या, महाराज ! मेरे घरमें कोई बहुरुपिया बनकर घुस गया और मुझे निकाल दिया बाहर।' राजाने कहा—'चार घोड़ोंकी बग्घीमें आया करते थे, आज आपकी यह दशा !' राजाने अपने आदमियोंसे पूछा—'कौन है वह ? जाकर मालूम करो।' घरपर खबर गयी तो घरवालोंने कहा कि 'अच्छा ! वह राज्यमें पहुँच गया ! बिलकुल नकली आदमी है वह। हमारे सेठ तो भीतर विराजमान हैं। राजाको जाकर कहा कि वह तो घरमें अच्छी तरहसे विराजमान है। राजाने कहा—'सेठको कहो कि राजा बुलाते हैं।' अब सेठ चार घोड़ोंकी बग्घी लगाकर ठाट-बाटसे जैसे जाते थे, वैसे ही पहुँचे और बोले—'अन्नदाता ! क्यों याद फरमाया, क्या बात है ?'

राजाजी बड़े चकराये कि दोनों एक-से दीख रहे हैं। पता कैसे लगे ? मंत्रियोंसे पूछा तो वे बोले—'साहब, असली सेठका कुछ पता नहीं लगता।' तब राजाने पूछा, 'आप दोनोंमें असली और नकली कौन हैं ?' तो कहा—'परीक्षा कर लो।' जो सन्त सेठ बने हुए थे उन्होंने

कहा—'बही लाओ। बहीमें जो लिखा हुआ है, वह हम बता देंगे।' बही मँगायी गयी। जो सेठ बने हुए संत थे, उन्होंने बिना देखे ही कह दिया कि अमुक-अमुक वर्षमें अमुक मकानमें इतना खर्चा लगा, इतना घी लगा, अमुकके ब्याहमें इतना खर्चा हुआ। वह हिसाब अमुक बहीमें, अमुक जगह लिखा हुआ है।' वह सबका—सब मिल गया। सेठ बेचारा देखता ही रह गया। उसको इतना याद नहीं था। इससे यह सिद्ध हो गया कि वह सेठ नकली है। तो कहा कि—'इसे दण्ड दो।' पर संतके कहनेसे छोड़ दिया।

दूसरे दिन फिर वह धोती और लोटा लेकर गया। वहाँ वही संत बैठे थे। उस सेठको देखकर संतने कहा—'राम-राम!' तब उसकी आँख खुली कि यह सब इन संतका चमत्कार है। संतने कहा—'तुम भगवान्‌का नाम लिया करो, हरेकका तिरस्कार, अपमान मत किया करो। जाओ, अब तुम अपने घर जाओ।' वह सेठ सदाकी तरह चुपचाप अपने घर आ गये।

अभिमानमें आकर लोग तिरस्कार कर देते हैं। धनका अभिमान बहुत खराब होता है। धनी आदमीके प्रायः भक्ति लगती नहीं। धनी आदमी भक्त होते ही नहीं, ऐसी बात भी नहीं है। राजा अम्बरीष भक्त हुए हैं। और भी बहुतसे धनी आदमी भगवान्‌के भक्त हुए हैं; परंतु धनका अभिमान उनके नहीं था। उन्हें धनकी परवाह नहीं थी। भगवान् अभिमानको अच्छा नहीं समझते—'**अभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च**'। नारदजी जैसे भक्तको भी अभिमान आ गया।'**जिता काम अहमिति मन माहीं**।' (मानस, बालकाण्ड, दोहा १२७।५) अभिमानकी अधिकता आ गयी कि मैंने कामपर विजय कर ली तो क्या दशा हुई उनकी? भगवान् अपने भक्तका अभिमान रहने ही नहीं देते।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ७४।७)

अभिमानसे बहुत पतन होता है। उस अभिमानको भगवान् दूर करते हैं। आसुरीसम्पत्ति और जितने दुर्गुण-दुराचार हैं, सब-के-सब अभिमानकी छायामें रहते हैं।

महाभारतमें आया है—बहेड़ेकी छायामें कलियुगका निवास है, ऐसे ही सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्तिका निवास अभिमानकी छायामें है। धनका, विद्याका भी अभिमान आ जाता है। हम साधु हो जाते हैं तो वेश-भूषाका भी अभिमान आ जाता है कि हम साधु हैं। हमें क्या समझते हो—यह भी एक फूँक भर जाती है। अरे भाई, फूँक भर जाय दरिद्रताकी। धनवत्ताकी भरे उसमें तो बात ही क्या है! धनीके यहाँ रहनेवाले मामूली नौकर आपसमें बात करते हैं—'कोई भाग्यके कारण पैसे मिल गये; परंतु सेठमें अक्ल नहीं है।' उनको पूछा जाय,'तुम ऐसे अक्लमन्द होकर बेअकलके यहाँ क्यों रहते हो'? ऐसे ही पंडितोंको अभिमानी लोग कहते हैं—'पढ़ गये तो क्या हुआ अक्ल है ही नहीं।' मानो अक्ल तो सब-की-सब उनके पास ही है। दूसरे सब बेअक्ल हैं।

'अकलका अधूरा और गाँठका पूरा' मिलना बड़ा मुश्किल है। धन मेरे पास बहुत हो गया, अब धनकी मुझे जरूरत नहीं है और मेरेमें समझकी कमी है, थोड़ा और समझ लूँ—ऐसे सोचनेवाले आदमी कम मिलते हैं। दोनोंका अजीर्ण हुआ रहता है। दरिद्रताका भी अभिमान हो जाता है। साधारण लोग कहते हैं—'सेठ हैं, तो अपने घरकी सेठानीके हैं। हम क्या धरावें सेठ है तो?' यह बहुत ही खराब है भगवान् ही बचायें तो आदमी बचता है, नहीं तो हरेक हालतमें अभिमान आ जाता है। इसलिये अभिमानसे सदा सावधान रहना चाहिये।

संतोंका स्वभाव

संतोंके अभिमान नहीं होता। वे भगवान्‌के प्यारे होते हैं और सबको बड़ा मानते हैं।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा ८।२)

जितने पुरुष हैं, वे हमारे रामजी हैं और जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब सीताजी—माँ हैं। इस प्रकार उनका भाव होता है। **'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'**—वे सबको भगवान् मानते हैं, इस कारण उनके भीतर अभिमान नहीं आता। वे ही भगवान्‌को प्यारे लगते हैं; क्योंकि **'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध'**—वे किसके साथ विरोध करें।

श्रीचैतन्य-महाप्रभुके समयमें जगाई-मधाई नामके पापी थे। उनको नित्यानन्दजीने नाम सुनाया तो उन्हें खूब मारा। मार-पीट सहते हुए वे कहते कि तू हरि बोल, हरि बोल। उनपर भी कृपा की। चैतन्य-महाप्रभुने उनको भक्त बना दिया। उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि जो अधिक पापी, धनी एवं पंडित होते हैं, उनपर विशेष कृपा करनी चाहिये; क्योंकि उनको चेत कराना बड़ा मुश्किल होता है। और उपायोंसे तो ये चेतेंगे नहीं, भक्तिकी बात सुनेंगे ही नहीं; क्योंकि उनके भीतर अभिमान भरा हुआ है। चैतन्य-महाप्रभुने ऐसे लोगोंके द्वारा भी भगवन्नाम उच्चारण करवाकर कृपा की। भगवान्‌के नाम-कीर्तनमें वे सबको लगाते। पशु-पक्षीतक खिंच जाते उनके भगवन्नाम-कीर्तनमें।

'जग पालक बिसेषि जन त्राता'—ऐसे नाम महाराज दुष्टोंका भी पालन करनेवाले, अभिमानियोंका अभिमान दूर कराकर भजन करानेवाले एवं साधारण मनुष्योंको भी भगवान्‌की तरफ लगानेवाले हैं। ये सबको लगाते हैं कि सब भगवान्‌के प्यारे बन जायँ। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'**—केवल नीरोग ही नहीं, भगवान्‌के प्यारे भक्त बन जायँ—यह उन नाम-महाराजकी इच्छा रहती है। इसी प्रकार संतोंके दर्शनसे भी बड़ा पुण्य होता है, बड़ा भारी लाभ होता है। क्यों

होता है ? उनके हृदयमें भगवद्‌बुद्धि बनी रहती है और वे सबकी सेवा करना चाहते हैं। इस कारण उनके दर्शनमात्रका असर पड़ता है। स्मरणमात्रका एवं उनकी बातमात्रका असर पड़ता है। क्योंकि उनके हृदयमें भगवद्‌भाव और सेवा-भाव लबालब भरे रहते हैं। इसलिये उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तन आदिका लोगोंपर असर पड़ता है, लोगोंका बड़ा भारी कल्याण होता है।

जैसे बीड़ी-सिगरेट पीनेवाले लोग अपनी टोली बना लेते हैं, वैसे संत लोग भी कुछ-न-कुछ अपनी टोली बना लेते हैं। आप-से-आप उनकी टोली बन जाती है। भजन करनेवाले इकट्ठे हो जाते हैं और भजनमें लग जाते हैं। बहुत युगोंसे यह परम्परा चली आ रही है। बड़े-बड़े अच्छे महात्माओंको हुए सैकड़ों वर्ष हो गये; परंतु फिर भी उनके नामसे उनके क्षेत्र चल रहे हैं। वहाँ भगवन्नाम-जप, स्मरण-कीर्तन, उपकार, दान, पुण्य, दुनियाका हित आदि होता रहता है। नाम-महाराजके प्रभावसे ऐसा होता है। भगवान्‌का नाम अपने भक्त-जनोंका विशेष त्राता है, अर्थात् विशेषतासे रक्षा करनेवाला है।

भगति सुतिय कल करन बिभूषन।
जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २०। ६)

'र' और 'म'—ये दोनों अक्षर भक्तिरूपिणी जो श्रेष्ठ स्त्री है, उसके कानोंमें सुन्दर कर्ण-फूल हैं। हाथोंमें भूषण होते हैं और पैरोंके भी भूषण होते हैं, फिर यहाँ केवल कर्ण-भूषण कहनेका क्या तात्पर्य ? कानोंसे 'राम' नाम सुननेसे भक्ति उसके हृदयमें आ जाती है। इसलिये 'राम' नाम भक्तिके कर्ण-भूषण हैं। भक्तिको हृदयमें बुलाना हो तो 'राम' नामका जप करो। इससे भक्ति दौड़ी चली आयेगी। भीतर विराजमान हो जायेगी और निहाल कर देगी।

'जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन'—चन्द्रमा और सूर्य—ये दो

भगवान्‌की आँखें हैं। दोनों रात-दिन प्रकाश करते हैं। इन दोनोंसे जगत्‌का हित होता है

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५।१२)

सूर्यके प्रकाशसे एवं गमीसे वर्षा होती है और उससे खेती होती है।

'**तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च**'—सूर्य भगवान् वर्षा करते हैं। वर्षाके होनेसे धान बढ़ता है, घास बढ़ती है, खेती बढ़ती है। खेतीमें जहरीलापन सुखाकर पकानेमें सूर्य भगवान् हेतु होते हैं और खेतीको पुष्ट करनेमें चन्द्रमा हेतु होते हैं। खेती करनेवाले कहा करते हैं कि अब चान्दना (शुक्ल) पक्ष आ गया, अब खेती बढ़ेगी; क्योंकि चन्द्रमा अमृतकी वर्षा करते हैं, जिससे फल-फूल लगते हैं और बढ़ते हैं।

वायुमण्डलमें जो जहरीलापन होता है, उसको सूर्यका ताप नष्ट कर देता है। कभी वर्षा नहीं होती, अकरी आ जाती है तो लोग कहते हैं—झांझली आ गयी। वह झांझली भी आवश्यक होती है, नहीं तो यदि हरदम वर्षा होती रहे तो वायुमण्डलमें, पौधोंमें जहरीलापन पैदा हो जाता है। इस जहरीलेपनको सूर्य नष्ट कर देता है। इसलिये सूर्य पोषण करता है और चन्द्रमा अमृत-वर्षा करता है। गोस्वामीजी दोनों प्रकारकी ऋतुओंका वर्णन आगे करेंगे।

दोनों पक्षोंमें चन्द्रमाका प्रकाश समान ही रहता है, पर एक पक्षमें घटता है और दूसरेमें बढ़ता है—ऐसा लोग मानते हैं। रोजाना रात और दिनमें चन्द्रमाकी घड़ियाँ मिलाकर देखी जायँ तो बराबर होती हैं। इसी प्रकार आजकी आधी रातसे दूसरे दिन आधी राततक आठ पहरकी घड़ियोंका १५ दिनोंका मिलान करनेसे शुक्लपक्ष और कृष्ण-पक्षके पंद्रह दिनोंमें प्रकाशकी और अन्धेरेकी घड़ियाँ बराबर आयेंगी। फिर यह शुक्ल और कृष्णपक्ष क्या है? चन्द्रमा शुक्लपक्षमें पोषण

करता है, अमृत बरसाता है, जिससे वृक्षोंके फल बढ़ते हैं, बहनों-माताओंके गर्भ बढ़ते हैं और उन सबको पोषण मिलता है। चन्द्रमासे सम्पूर्ण बूटियोंमें विलक्षण अमृत आता है और सूर्यसे वे पकती हैं। जैसे सूर्य और चन्द्रमा सम्पूर्ण जगत्का हित करते हैं, वैसे ही भगवान्के नामके जो 'र' और 'म' दो अक्षर हैं, वे सब तरहसे पोषण करनेवाले हैं।

'जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन'—यह 'राम' नाम विमल है। चन्द्रमा और सूर्यपर राहु और केतुके आनेसे ग्रहण होता है, परंतु 'राम' नामपर ग्रहण नहीं आता। चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है, पर राम तो बढ़ता ही रहता है। **'राम कभी फूटत नाहीं'** यह फूटता नहीं, रात-दिन बढ़ता ही रहता है। यह सदा ही शुद्ध है, इसलिये जगत्के हितके लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्यके समान है।

भगवान्के नामके दो अक्षर 'रा' और 'म' हैं, जिनकी महिमा गोस्वामीजी महाराज कह रहे हैं। यह महिमा ठीक समझमें तब आती है, जब मनुष्य नाम-जप करता है। भगवान्ने कृपा कर दी, यह मनुष्य शरीर दे दिया, सत्संग सुननेको मिल गया। अब नाम-जपमें लग जाओ। इस जमानेमें जो थोड़ा भी जप करते हैं, उनकी बड़ी भारी महिमा है। कलियुगमें सब चीजोंके दाम बढ़ गये तो क्या भगवन्नामके दाम नहीं बढ़े हैं ? अभी भजनकी महिमा अन्य युगोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा बढ़ी है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२।८)

राम ! राम !! राम !!!

——:०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—४

अमृतमय 'राम' नाम

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।
कमठ सेष सम धर बसुधा के॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २० । ७)

जीवका कल्याण हो जाय, इससे ऊँची कोई गति नहीं है। ऐसी जो श्रेष्ठ गति (मुक्ति) है, उसको 'सुगति' कहते हैं, परम सिद्धि भी वही है, जो इस 'राम' नामसे प्राप्त हो जाती है। **'स्वाद तोष सम'**— अमृतके स्वाद और तृप्तिके समान 'राम' नाम है। जैसे, भोजन किया जाता है तो उसमें बढ़िया रस आता है। भोजन करनेके बादमें तृप्ति और सन्तोष होता है, ऐसे ही यह 'राम' नाम सुगति और सुधाके स्वाद और तोष (तृप्ति) के समान है। मानो 'र' मधुरिमा और 'म' सन्तोष है। 'रा' कहते ही मुख खुलता है और 'म' कहते ही बन्द होता है। भोजन करते समय मुख खुलता है और तृप्ति होनेपर मुख बन्द हो जाता है। इस प्रकार 'रा' और 'म' अमृतके स्वाद और तोषके समान हैं।

भोजनकी परीक्षाके लिये जीभपर रस लेकर तालुसे लगानेपर पता लग जाता है कि उसमें रस कैसा है। जहाँसे रस लिया जाता है, वहाँसे ही 'र' का उच्चारण होता है। 'र' कहनेमें सुधाका स्वाद आता है और 'म' कहनेमें तोष हो जाता है। राम, राम, राम.... ऐसे कहते हुए एक बहुत विलक्षण रस आता है। उससे सदाके लिये तृप्ति हो जाती है। नाममें रस आनेपर फिर दूसरे रसोंकी जरूरत नहीं रहती। जिनको भगवन्नाममें रस आ जाता है, उनकी संसारके विषयोंसे रुचि हट जाती

है। जबतक संसारके विषयोंकी रुचि रहती है, तबतक भगवन्नाममें रस नहीं आता है। भगवान्‌के नाममें जब रस आना शुरू हो जाता है, फिर सब रस फीके हो जाते हैं।

श्रीगोस्वामीजी महाराज कहते हैं—'यदि 'राम' नाम मेरेको मीठा लगता तो सब-के-सब रस फीके हो जाते'। भोजनके छः रस और काव्यके नौ रस होते हैं। ये सब फीके हो जाते हैं; क्योंकि ये सब बाह्य हैं। उत्पन्न और नष्ट होनेवाले पदार्थोंसे मिलनेवाला रस 'नीरसता'में बदल जाता हैं। **'विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्'**—संसारमें जितने रस हैं, वे विषय और इन्द्रियोंके सम्बन्धसे होनेवाले हैं। वे आरम्भमें अमृतके समान लगते हैं, परंतु **'परिणामे विषमिव'**—परिणाममें जहरकी तरह होते हैं। इस तरफ विचार न करनेसे मनुष्य विषयोंमें फँसता है। जो विचारवान् सात्त्विक पुरुष होते हैं, वे पहले परिणामकी तरफ देखते हैं, इस कारण वे फँसते नहीं।

सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं,
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।

सज्जनो! ये बातें ऐसे ही केवल कहने-सुननेकी नहीं हैं, समझनेकी हैं और समझकर काममें लानेकी हैं। आदमीको सोच-समझकर काम करना चाहिये। विचारपूर्वक काम करनेवालेको परिणाममें कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय,
काज बिगारे आपना जगमें होत हँसाय।
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावे,
राग रंग सन्मान ताहिके मन नहिं भावे।
कह गिरधर कविराय करम गति टरे न टारे,
खटकत है हिय माँहि करे जो बिना बिचारे॥

बिना विचार किये काम करनेसे आगे दुःख पाना पड़ता है

और वह बात हृदयमें भी खटकती रहती है। मनुष्य अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग कर दे और दूसरोंके हितके लिये काम करे तो उसका जीवन सफल हो जाय। सात्त्विक वृत्तियोंकी मुख्यता रखकर अर्थात् विचारपूर्वक प्रत्येक कार्य करना चाहिये। लोग भोजन करते हैं तो दुःख, शोक और रोग देनेवाले राजसी भोजनमें प्रवृत्त होते हैं। जान-बूझकर कुपथ्य कर लेते हैं। छोटे-से जीभके टुकड़ेके वशमें होकर साढ़े तीन हाथके शरीरका नुकसान कर लेते हैं। अगर विवेक होता तो शरीरका नाश क्यों कर लेते ? इतना ही नहीं, अभक्ष्य-भक्षण करके नरकोंकी तैयारी कर लेते हैं।

'राम' नामकी महिमा कहते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—'सुगति' रूपी जो सुधा है, यह सदाके लिये तृप्त करनेवाली है। सदाके लिये लाभ हो जाय, जिस लाभके बादमें कोई लाभ बाकी नहीं रहता, जहाँ कोई दुःख पहुँच ही नहीं सकता है। ऐसे महान् आनन्दको प्राप्त करानेवाली जो श्रेष्ठ गति है, उसका रस 'राम' नामका जप करनेसे आता है। जो 'राम' नामसे तृप्त हो जाते हैं, वे फिर सांसारिक भोगोंमें फँसेंगे नहीं। उनसे कहना नहीं पड़ेगा कि पाप-अन्याय मत करो। उनकी पाप-अन्यायमें रुचि रहेगी ही नहीं। जिनको भगवन्नामका रस नहीं मिला है, वे धन इकट्ठा करने और भोग भोगनेमें लगे हैं।

सज्जनो ! माताओ-बहनो ! भगवान्के नाममें रस लो, इसमें तल्लीन हो जाओ। रात-दिन इसमें लग जाओ। आप-से-आप पाप-अन्याय छूट जायेगा। निषिद्ध आचरणोंसे स्वतः ही ग्लानि हो जायेगी। अभी मलिनता अच्छी लगती है, बुरी नहीं लगती, कारण क्या है ? अन्तःकरण मैला है। जो खुद मैला है, उसे मैली चीज ही अच्छी लगेगी। मक्खियाँ मिठाईपर तभीतक बैठी रहती हैं कि जबतक मैलेकी टोकरी पाससे होकर न निकले। मुँहपर मक्खियाँ बैठने लगें तो

बढ़िया सुगन्धवाला इत्र थोड़ा-सा लगा लो फिर मक्खियाँ नहीं आयेंगी; क्योंकि उनको सुगन्धि सुहाती ही नहीं। **'मक्षिका व्रणमिच्छन्ति'**—वे तो घावपर जहाँ पीप-खून मिले, वहाँ बैठेंगी। ऐसे ही जिसका मन अशुद्ध होता है, वह ही मलिन वस्तुओंकी तरफ आकृष्ट होता है। भगवान्‌के नाम-रूपी सुगन्धके मिलनेपर फिर मैली वस्तुओंकी तरफ मन नहीं जायेगा।

सज्जनो ! यह बड़ा सुगम उपाय है। भगवान्‌के नामका जप करो और प्रभुके चरणोंका सहारा रखो। जैसे साधारण मनुष्य धन कमाने और भोग भोगनेमें रस लेते हैं, वैसे ही भगवत्प्रेमीको भगवन्नाम, सत्संग और सत्-शास्त्रोंके अध्ययनमें रस लेना चाहिये। इस रसके लिये ही मानव जीवन मिला है जिसे 'राम' नाम लेनेमें रस आने लगेगा, वह रात-दिन नाम जपमें लग जायगा, फिर वह संसारके विषयोंमें फँसेगा ही कैसे ?

संत-संगकी महिमा

श्रीचैतन्य-महाप्रभुके कई शिष्य हुए हैं। उनमें एक यवन हरिदासजी महाराज भी थे। वे थे तो मुसलमान, पर चैतन्य-महाप्रभुके संगसे भगवन्नाममें लग गये। सनातन धर्मको स्वीकार कर लिया। उस समय बड़े-बड़े नवाब राज्य करते थे, उनको बड़ा बुरा लगा। लोगोंने भी शिकायत की कि यह काफिर हो गया। इसने हिन्दूधर्मको स्वीकार कर लिया। उन लोगोंने सोचा—'इसका कोई-न-कोई कसूर हो तो फिर अच्छी तरहसे इसको दण्ड देंगे।'

एक वेश्याको तैयार किया और उससे कहा—'यह भजन करता है, इसको यदि तू विचलित कर देगी तो बहुत इनाम दिया जायगा।' वेश्याने कहा—'पुरुष जातिको विचलित कर देना तो मेरे बायें हाथका खेल है।' ऐसे कहकर वह वहाँ चली गयी जहाँ हरिदासजी एकान्तमें

बैठे नाम-जप कर रहे थे। वह पासमें जाकर बैठ गयी और बोली—'महाराज, मुझे आपसे बात करनी है।' हरिदासजी बोले—'मुझे अभी फुरसत नहीं है।' ऐसा कहकर भजनमें लग गये। ऐसे उन्होंने उसे मौका दिया ही नहीं। तीन दिन हो गये, वे खा-पी लेते और फिर '**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥**' मन्त्र-जपमें लग जाते। ऐसे वेश्याको बैठे तीन दिन हो गये, पर महाराजका उधर ख्याल ही नहीं है, नाममें ही रस ले रहे हैं। अब उस वेश्याका भी मन बदला कि तू कितनी निकृष्ट और पतित है। यह बेचारा सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगा हुआ है इसको विचलित कर नरकोंकी ओर तू ले जाना चाहती है, तेरी दशा क्या होगी ? इतना भगवन्नाम सुना, ऐसे विशुद्ध संतका संग हुआ, दर्शन हुए। अब तो वह रो पड़ी एकदम ही 'महाराज ! मेरी क्या दशा होगी, आप बताओ ?'

जब महाराजने ऐसा सुना तो बोले 'हाँ, हाँ। बोल अब फुरसत है मुझे। क्या पूछती हो ?' वह कहने लगी—'मेरा कल्याण कैसे होगा ? मेरी ऐसी खोटी बुद्धि है, जो आप भजनमें लगे हुएको भी नरकमें ले जानेका विचार कर रही थी। मैं आपको पथभ्रष्ट करनेके लिये आयी। नवाबने मुझे कहा कि तू उनको विचलित कर दे, तेरेको इनाम देंगे। मेरी दशा क्या होगी ?' तो उन्होंने कहा 'तुम नाम-जप करो, भगवान्‌का नाम लो।'

फिर बोली—'अब तो मेरा मन भजन करनेका ही करता है, भविष्यमें कोई पाप नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी।' हरिदासजीने उसे माला और मन्त्र दे दिया। 'अच्छा यह ले माला ! बैठ जा यहाँ और कर हरि भजन।' उसे वहाँ बैठा दिया और वह—'**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥**' इस मन्त्रका जप करने लगी। हरिदासजीने सोचा—'यहाँ मेरे रहनेसे नवाबको दुःख

होता है तो छोड़ो इस स्थानको और दूसरी जगह चलो।'

एकान्तमें दो-तीन दिनतक वेश्या बैठी रही, फिर भी हरिदासजीका मन नहीं चला—इसमें कारण क्या था ? 'राम' नामका जो रस है, वह भीतरमें आ गया। अब बाकी क्या रहा ! सज्जनो ! संसारके रससे सर्वथा विमुख होकर जब भगवन्नाम-जपमें प्रेमपूर्वक लग जाओगे, तब यह भजनका रस स्वतः आने लगेगा। इसलिये 'राम' नाम रात-दिन लो, कितनी सीधी बात है !

नाम लेने का मजा जिसकी जुबाँ पर आ गया।
वो जीवन्मुक्त हो गया चारों पदार्थ पा गया॥

किसी व्यापारमें मुनाफा कब होता है ? जब वह बहुत सस्तेमें खरीदा जाय, फिर उसका भाव बहुत मँहगा हो जाय, तब उसमें नफा होता है। मान लो, दो-तीन रुपये मनमें अनाज आपके पास लिया हुआ है और भाव चालीस, पैंतालीस रुपये मनका हो गया। लोग कहते हैं, अनाजका बाजार बड़ा बिगड़ गया, पर आपसे पूछा जाय तो आप क्या कहेंगे ? आप कहेंगे कि मौज हो गयी। आपके लिये बाजार खराब नहीं हुआ। ऐसे ही 'राम' नाम लेनेमें सत्ययुगमें जितना समय लगता था, उतना ही समय अब कलियुगमें लगता है। पूँजी उतनी ही खर्च होगी और भाव होगा कलियुगके बाजारके अनुसार। कितना सस्ता मिलता है और कितना मुनाफा होता है इसमें ! कलियुगमें नामकी महिमा विशेष है।

भगवन्नाममें शक्ति

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः॥

श्रीचैतन्य-महाप्रभुने कहा है कि नाममें भगवान्‌ने अपनी

सब-की-सब शक्ति रख दी। अनेक साधनोंमें जो शक्ति है, सामर्थ्य है, जिन साधनोंके करनेसे जीवका कल्याण होता है, कलियुगको देखकर भगवान्‌ने भगवन्नाममें उन सब साधनोंकी शक्ति रख दी। जो अनेक साधनोंमें ताकत है, वह सब ताकत नाम महाराजमें है। इसे स्मरण करनेके लिये समयका प्रतिबन्ध भी नहीं है। सुबह, दोपहर या रातमें, किसी समय जप करें। 'ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य ही करें, दूसरे न करें, भाई लोग जप करें, माता-बहनें न करें'—ऐसा कोई नियम नहीं है।

कलिसंतरणोपनिषद्‌में नाम-महिमा आयी है। एक बार नारदजी ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने पूछा—'कैसे आये हो?' नारदजीने 'कहा—'पृथ्वीमण्डलपर अभी कलियुग आया हुआ है। इस कलियुगमें जीवोंका उद्धार सुगमतापूर्वक कैसे हो?' ब्रह्माजीने कहा—'कलियुगके पापोंको दूर करनेके लिये यह महामन्त्र है—'**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**' '**इति षोडशकं कल्मषनाशनम्।**' भगवन्नाम ही इस कलियुगमें सुगम साधन है।

फिर नारदजीने पूछा—'**कोऽस्ति विधिरिति सहोवाच प्रजापतिः**' भगवन्नाम लेनेकी विधि क्या है? तो ब्रह्माजीने उत्तर दिया—'**नास्ति विधिः**' कोई कैसा ही हो। पापी हो या पुण्यात्मा वह नाम जपता हुआ सायुज्य, सालोक्य आदि मुक्तियोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये नाम लिये जाओ बस। कलियुगी जीवोंके लिये कितनी सुगम बात बता दी! अगर विधियाँ बता देते तो मुश्किल हो जाती। नाम-जपमें निषेध कुछ है ही नहीं। '**सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू**' सबके लिये सुलभ है। '**सुलभं भगवन्नाम वागस्ति वशवर्तिनी**'। भगवान्‌का नाम सुलभ है, इसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। वर्तमान सरकारने भी कोई प्रतिबन्ध

नहीं लगाया है, आगे खतरा हो सकता है, परंतु अभी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। खुला नाम लो भले ही, कोई मना नहीं है।

राम दड़ी चौड़े पड़ी, सब कोई खेलो आय।
दावा नाहीं सन्तदास, जीते सो ले जाय॥

किसीका दावा नहीं है। सब कोई भगवान्‌का नाम ले सकते हैं। जैसे बापकी जगहपर बेटेका हक लगता है, वैसे भगवन्नामपर हमारा पूरा-का-पूरा हक लगता है; क्योंकि यह हमारे बापका नाम है। ऐसा अपनेको अधिकार मिला हुआ है। कितनी मौजकी बात है, कितने आनन्दकी बात है यह! मनुष्य शरीर मिल गया और फिर इसमें भगवान्‌का नाम मिल गया।

हाथ काम मुख राम है, हिरदे साँची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥

हाथोंसे अपना काम करते हुए मुँहसे 'राम' नाम जप करते रहें। बहनें-माताएँ घरका काम करें। भाई लोग खेतोंमें या दूकानोंमें काम करें। वे जहाँ हों, वहाँ ही रहकर काम करते रहें। हृदयमें भगवान्‌से स्नेह बना रहे। हमें भगवान्‌की तरफ ही चलना है। मनुष्य-शरीर मिला है इसलिये उद्धार करना है। हृदयमें सच्चा प्रेम भगवान्‌से हो, सांसारिक पदार्थोंसे, भोगोंसे न हो। संतोंने कहा है—

नर तन दीनो रामजी, सतगुरु दीनो ज्ञान,
ए घोड़ा हाँको अब, ओ आयो मैदान।
ओ आयो मैदान बाग करड़ी कर सावो,
हृदय राखो ध्यान नाम रसनासे गावो।
कुण देख सगराम कहे आगे काढ़े कान,
नर तन दीनो रामजी, सतगुरु दीनो ज्ञान॥
कह दास सगराम बरगड़े घालो घोड़ा,

भजन करो भरपूर रह्या दिन बाकी थोड़ा।
थोड़ा दिन बाकी रह्या कद पहुँचोला ठेट,
अध बिचमें बासो बसो तो पड़सो किणरे पेट।
पड़सो किणरे पेट पड़ेला भारी फोड़ा,
कह दास सगराम बरगड़े घालो घोड़ा॥

ऐसा बढ़िया मौका आ गया है। कितना सीधा, सरल रास्ता संतोंने बता दिया! '**संतदास सीधो दड़ो सतगुरु दियो बताय**', '**धावन्निमिल्य वा नेत्रे न स्खलेन्नपतेदिह।**' इस मार्गमें मनुष्य न स्खलित होता है, न गिरता है, न पड़ता है—ऐसा सीधा और सरल रास्ता है। संतोंने कृपा करके बता दिया। हर कोई ऐसी गुप्त बात बताते नहीं हैं—

राम नामकी संतदास दो अन्तर धक धूण।
या तो गुपती बात है कहो बतावे कूण॥

तुलसीदासजी कहते हैं '**कमठ सेष सम धर बसुधा के**'—'राम' नामके दो अक्षर 'र' और 'म' शेषनाग और कमठके समान हैं। जैसे पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष और कमठ हैं, ऐसे यह जो 'राम' नाम है इसमें 'र' शेषनाग है ('र' का आकार भी ऐसा ही होता है) और 'म' कमठ (कछुआ) है। संसारमात्रको धारण करनेमें रामजी महाराज कमठ और शेषके समान हैं। अपने भक्तको धारण करनेमें उनके कौन बड़ी बात है!

सरवर पर गिरवर तरे, ज्यूँ तरवरके पात।
जन रामा नर देहको तरिबो किती एक बात॥

भगवान्‌के नामसे समुद्रके ऊपर पत्थर तैर गये तो मनुष्यका उद्धार हो जाय—इसमें क्या बड़ी बात है! भगवान्‌ने उद्धार करनेके लिये ही इसको मनुष्य शरीर दिया। भगवान्‌ने भरोसा किया कि यह अपना उद्धार करेगा। सज्जनो! मुफ्तमें बात मिली हुई है। भगवान्‌ने जब

विचार किया कि यह उद्धार करे तो भगवान्‌की कृपा एवं उनका संकल्प हमारे साथ है। पतनमें हमारा अपना हाथ है, उसमें भगवान्‌का हाथ नहीं है। उनका संकल्प हमारे उद्धारका है, कितनी भारी मदद है ! सब संत, ग्रन्थ, धर्म, सद्‌गुरु, सत्-शास्त्र हमारे साथ हैं। ऐसा भगवान्‌का नाम है। केवल हम थोड़ी-सी हाँ-में-हाँ मिला दें। आगे गोस्वामीजी कहते हैं—

जन मन मंजु कंज मधुकर से।
जीह जसोमति हरि हलधर से॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २०।८)

ये नाम महाराज भक्तोंके मन-रूपी सुन्दर कमलमें विहार करनेवाले भौंरेके समान हैं और जीभरूपी यशोदाजीके लिये श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान आनन्द देनेवाले हैं। भक्तोंका मन बहुत सुन्दर कमलके समान है, उसके ऊपर राम, राम, राम... नामरूपी भँवरे मँडरा रहे हैं। ये मनके ऊपर बैठे हैं। मन हरदम भगवान्‌के नाममें लगा हुआ है। इस कारण भक्तोंको दूसरी चीज सुहाती नहीं। भगवन्नाममें यदि कोई बाधा लगती है तो वह उन्हें सुहाती नहीं है।

भजनानंदी संत

जोधपुरमें श्रीबुधारामजी महाराज हुए हैं। 'बागर'में उनका रामद्वारा है। वे माताजी सहित वहाँ रहते थे। इनको खेड़ापा महाराजका उपदेश हो गया तो रात-दिन 'राम' नाम जपमें लग गये। जब रसोई बनकर तैयार हो जाती तो माँ कह देती—'बेटा ! रोटी बन गयी है।' तब वे आकर भोजन कर लेते, फिर वैसे ही राम, राम... करने लग जाते। एक बार वे अपनी माँसे बोले—'माँ, रोटी मत बनाया कर। रोटी चबानेमें जितना समय लगता है, उतना समय नाम-जपके बिना चला जाता है, इसलिये तू खिचड़ी या खीचड़ा बना दिया कर।' अब

खिचड़ी परोसे तो वह बहुत देरतक गरम रहती थी। तो कहा—'माँ, जब ठण्डी हो जाय, तब मेरेको कहा कर। अब इस अन्नकी उपासना कौन करे, देर लगती है।' फिर एक दिन कहा—'माँ, राबड़ी बना दिया कर।' माँ आटा घोलकर राबड़ी बना देती। वह ठण्डी होनेपर गट-गट पी लेते। फिर राम, राममें लगे रहते।

भजन करनेमें लगे हुएको भोजन करनेमें समय लगाना ठीक नहीं लगता है। अब स्वाद तो ले ही कौन ? क्या बढ़िया देखे और क्या घटिया ? प्राणोंको रखना है, इसलिये अन्नकी खुराक दे दो—

कबीर छुधा है कूकरी तन सों दई लगाय।
याको टुकड़ा डालकर पीछे हरि गुण गाय॥

गोस्वामीजी कहते हैं—'**जीह जसोमति हरि हलधर से**'—माता यशोदाकी गोदमें कन्हैया और बलदाऊ—दोनों खेलते हैं। भगवान्‌के भक्तोंकी जो जीभ है, वह यशोदाजीके समान है। उनकी गोदमें 'रा' और 'म' रूपी कन्हैया और दाऊ भैया खेल रहे हैं। बालकको माँकी गोदमें खेलनेमें आनन्द आता है। मनमें 'भँवरे' रूपसे 'राम' नाम है, जीभपर राम-नाम '**हरि हलधर से**' हैं। इसलिये भक्तलोग मनसे भी 'राम' नाम और जीभसे भी'राम' नाम जपते रहते हैं। मनसे, वाणीसे, इन दोनों अक्षरोंमें तल्लीन होकर रात-दिन भजन करते हैं। किसी तरहकी कोई इच्छा, तृष्णा और वासना उनमें रहती ही नहीं। इस प्रकार इन 'र' और 'म' अक्षरोंकी महिमा कहाँतक कही जाय ! इनको लेनेसे ही इनका रस अनुभवमें आता है। इसलिये हर समय भगवन्नाम-जप करते ही रहना चाहिये।

राम ! राम !! राम !!!

——::०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—५

वास्तवमें छत्रपति कौन ?

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २०)

तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—श्रीरामजी महाराजके नामके—ये दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं। इनमेंसे एक 'र' छत्ररूपसे और दूसरा 'म' (अनुस्वार) मुकुटमणिरूपसे सब अक्षरोंके ऊपर है। राजाके दो खास चिह्न होते हैं—एक छत्र और एक मणि। 'मणि' मुकुटके ऊपर रहती है और 'छत्र' सिंहासनपर रहता है। राजाका खास शृंगार 'मणि' होता है। वर्षा और धूपसे बचनेके लिये छाता सब लोग लगाते हैं, पर राजाका छत्र वर्षा और धूपसे बचनेके लिये नहीं होता। उससे उनकी शोभा है और 'छत्र'के कारण वे छत्रपति कहलाते हैं।

महाराजा रघुने 'विश्वजित् याग' किया। उन्होंने अपने पास तीन चीजें ही रखीं—एक छत्र और दो चँवर। और सब कुछ दे दिया, अपने पास कुछ भी नहीं रखा। संसारमात्रपर विजय करना 'विश्वजित् याग' कहलाता है। संसारपर जीत कब होती है ? सर्वस्व त्याग करनेसे। संसारमें ऐसा देखा जाता है कि दूसरोंपर दबाव डालकर अपना राज्य बढ़ा लेनेवाला विजयी कहलाता है, पर वास्तवमें वह विजयी नहीं है। गीताने कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।

(५।१९)

यहाँ जीवित अवस्थामें ही इस संसारपर वे लोग विजयी हो गये, जिनका मन साम्यावस्थामें स्थित हो गया। मानो हानि-लाभ हो, सुख-दुःख हो, अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, पर जिनके चित्तपर कोई असर नहीं पड़ता, वे ज्यों-के-त्यों सम, शान्त, निर्विकार रहते हैं—ऐसे लोग ही वास्तवमें संसारपर विजयी होते हैं।

भाइयो ! बहनो ! आप ख्याल करना। इस बातकी तरफ ख्याल बहुत कम मनुष्योंका जाता है। लोग ऐसा समझते हैं कि हम बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे हैं। हमारे व्याख्यानमें बहुत आदमी आनेसे हम बड़े हो गये। इसमें थोड़ी सोचनेकी बात है, वे बड़े हुए कि हम बड़े हुए ! अगर आदमी कम आवें तो हम छोटे हो गये। आदमी ज्यादा आवें या कम आवें, हममें योग्यता हो या अयोग्यता, धन आ जाय या चला जाय, हमारी निन्दा हो जाय या स्तुति हो जाय—इनका हमारेपर कुछ भी असर न पड़े, तब हम बड़े हुए। नहीं तो हम बड़े कैसे हुए !

वास्तवमें छत्रपति कौन होता है ? 'राम' नाम लेनेवाला छत्रपति होता है। भगवान्‌के नामके जो रसिक होते हैं, उनके पास धन आवे न आवे, मान हो जाय, अपमान हो जाय; उनको नरक हो जाय, स्वर्ग हो जाय, उनके कोई फर्क नहीं पड़ता। नाम महाराजका जिसके सहारा है; वही वास्तवमें छत्रपति है। उसकी हार कभी होती ही नहीं। वह सब जगह ही विजयी है; क्योंकि नाम लेनेवालेका स्वयं भगवान् आदर करते हैं और उसे महत्त्व देते हैं **'मैं तो हूँ भगतनको दास, भगत मेरे मुकुट मणि'** दुनियामें आप किसीके अधीन बनो तो वह आपको अपना गुलाम बना लेगा और आप बड़ा बन जायगा। पर आप भगवान्‌के दास बन जाओ तो भगवान् आपको अपनेसे

बड़ा मानेंगे—ऐसी क्षमता भगवान्‌में ही है और किसीमें नहीं है। भगवान्‌का नाम भगवान्‌से भी बड़ा बना देता है। भगवन्नाम भगवान्‌से भी बड़ा है। पाण्डवगीतामें आया है—भगवान् शरण होनेपर मुक्ति देते हैं पर भगवान्‌का नाम ऐसा है, जो उच्चारणमात्रसे मुक्ति दे देता है। इसलिये भगवान्‌का नाम बड़ा हुआ। इसका आश्रय लेनेवाला भी बड़ा हो जाता है, जैसे छत्रका आश्रय लेनेवाला छत्रपति हो जाता है।

आजकल लोग धनसे धनपति, लखपति, करोड़पति कहलाते हैं—यह वहम ही है। यदि लाख रुपये चले जायँ तो मुश्किल हो जाय। अचानक घाटा लग जाय तो हार्टफेल हो जाय। वह धनपति कैसे हुआ? वह तो धनदास ही हुआ, धन उसका मालिक हुआ। धन महाराज चले गये, अब बेचारा दास कैसे बचे? वास्तवमें वह धनपति नहीं है। वह यदि मर जाय तो कौड़ी एक भी साथ नहीं चले। साथमें चलनेवाला धन जिसके पास होता है, वह कभी भी छोटा नहीं होता। ऐसा 'राम' नामरूपी धन जिसके पास है, वही असली धनपति है।

संसारमें किसी वर्ण, आश्रम, विद्या, योग्यता, धन, बुद्धि, राज्य, पद, मान, आदर, सत्कार आदिमें कोई छोटा भी हो सकता है; परंतु वह यदि भगवान्‌का भजन करता है तो छोटा नहीं है; क्योंकि उसके मनमें संसारकी गुलामी नहीं रहती है। ऐसी जो सबसे बड़ी चीज है, वह सबको मुफ्तमें सुगमतासे मिल सकती है—

जाट भजो गूजर भजो, भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाममें, सब काहू का सीर॥

भगवान्‌के नामपर सबका हक लगता है। हजारों आदमी भगवान्‌के नामका जप करें तो एकको हजारवाँ हिस्सा भगवान्‌का मिलेगा—यह बात नहीं है। सब-के-सब पूरे हकदार हैं। चाहे लाखों, करोड़ों, अरबों आदमी भजन करनेवाले हों, एक-एक आदमीको पूरा

माहात्म्य मिलेगा। ऐसे नहीं कि एक-एकको हिस्सेवार माहात्म्य मिलेगा। सब-के-सब पूर्ण हो सकते हैं; क्योंकि भगवान्‌का नाम, उनकी महिमा, तत्त्व, प्रभाव, रहस्य, लीला आदि सब पूर्ण-ही-पूर्ण हैं।

सज्जनो ! ऐसे भगवान्‌के नामको छोड़कर धनके पीछे आप लोग पड़े हैं। भोगोंके मान-बड़ाईके और आरामके पीछे पड़े हैं। न ये चीजें रहनेवाली हैं, न आराम और भोग रहनेवाले हैं, न मान-बड़ाई रहनेवाली है, न वैभव रहनेवाला है। ये सब जानेवाले हैं और आप रहनेवाले हो। फिर भी जानेवालेके गुलाम बन गये। बड़े दुःखकी बात है, पर करें क्या ? भीतरमें यह बात जँची हुई है कि इनसे ही हमारी इज्जत है। इनसे आपकी खुदकी बेइज्जती है, पर इधर दृष्टि ही नहीं जाती। मनुष्य यह ख्याल ही नहीं करता कि इसमें इज्जत किसकी है ! सब लोग 'वाह-वाह' करें—इसमें आप अपनी इज्जत मानते हैं और कोई आदर नहीं करे, उसमें आप अपनी बेइज्जती मानते हैं, यह अपनी खुदकी इज्जत नहीं है। आप पराधीन होनेको इज्जत मानते हो।

नाम और नामीकी महिमा

समुझत सरिस नाम अरु नामी।
प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१। १)

समझनेमें नाम और नामी—दोनों एक-से हैं; परंतु दोनोंमें परस्पर स्वामी और सेवकके समान प्रीति है अर्थात् नाम और नामीमें पूर्ण एकता होनेपर भी जैसे स्वामीके पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नामके पीछे नामी चलता है। भगवान् अपने नामका अनुगमन करते हैं अर्थात् नाम लेते ही वहाँ जाते हैं।

नाम और नामी—दो चीज हैं। दीखनेमें दोनों बराबर दीखते हैं। जैसे मनुष्योंमें उनके नाम और खुद नामीमें परस्पर प्रीति रहती है, ऐसे 'राम'—यह हुआ नाम और भगवान् रघुनाथजी महाराज हो गये

नामी। नाम लेनेसे श्रीरघुनाथजी महाराजका बोध होता है। दोनोंमें भेद न होनेपर भी एक फर्क है। वह क्या है? **'प्रभु अनुगामी'**—नाम महाराजके पीछे-पीछे राम महाराज चलते हैं। दोनों एक होनेपर भी भगवान्का नाम भगवान्से आगे चलता है। रघुनाथजी महाराज अपने नामके पीछे चलते हैं। यह कैसे? भगवान्का नाम लेनेसे वहाँ भगवान् आ जाते हैं, और भगवान्को आना ही पड़ता है, पर जहाँ भगवान् जायँ, वहाँ उनका नाम आ जाय—यह कोई नियम नहीं है। नामके बिना भगवान्को जान नहीं सकते। इसलिये नाम आँख मीचकर लेते जाओ। वहाँ रघुनाथजी महाराज आ जायेंगे। प्रेमसे पुकारकी जाय तो भगवान् उसके आचरणोंकी ओर देखते ही नहीं और बिना बुलाये ही आ जाते हैं।

सुतीक्ष्ण मुनिको भगवान् स्वयं जाकर जगाते हैं। नामके प्रेमीके पीछे रघुनाथजी महाराज चलते हैं। **'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूययेत्यङ्घ्रिरेणुभिः'** जिनके हृदयमें भोगोंकी, पदार्थोंकी लौकिक कोई भी इच्छा नहीं, मेरी मुक्ति हो जाय, मैं बंधनसे छूट जाऊँ, ऐसी भी मनमें इच्छा नहीं रहे—ऐसे निष्किञ्चन भक्त भगवान्के भजनमें रात-दिन लगे रहते हैं। उनके पीछे-पीछे भगवान् घूमते हैं—भगवान् कहते हैं, उनके पीछे-पीछे मैं डोलता हूँ, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ। भगवान् भी अपवित्र होते हैं क्या? **'पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्'**— भगवान् पवित्रोंके पवित्र हैं। वे भी नामसे पवित्र हो जायँ। नामसे दुनिया पवित्र होती है। करोड़ों ब्रह्माण्ड भगवान्के एक-एक रोममें रहते हैं, जहाँ भगवान्के भक्तकी चरणरज पड़ जाय तो ब्रह्माण्ड पवित्र हो जाय। जो कोई पवित्र होता है, उसके रूपमें भगवान् ही पवित्र होते हैं।

'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥' (गीता ७।१९)

भगवान्में और भगवान्के प्यारे भक्तमें भेद नहीं होता। वे प्रभुके

हो गये, इसलिये भक्त प्रभुमय हो जाते हैं।

यः सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः॥

(अध्यात्म, उत्तरकाण्ड ५। ६१)

अध्यात्म-रामायणके उत्तरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग है, जिसमें रामगीता आती है। रामजीने लक्ष्मणजीको वहाँ उपदेश दिया है। वहाँ वे कहते हैं—शुद्ध सच्चिदानन्द निर्गुण परमात्माका कोई ध्यान करे चाहे सगुणका, वह मेरा ही स्वरूप है। वह जहाँ जाता है, वहाँ उसके चरणोंके स्पर्शकी रजसे त्रिलोकी पवित्र हो जाती है। जहाँ वह जाता है, वहाँ प्रकाश कर देता है। जैसे, सूर्य भगवान् जिस देशमें जाते हैं, वहाँ प्रकाश कर देते हैं। वे प्रकाश करते हैं बाहरका, जब कि संत-महात्मा उनके हृदयमें प्रकाश कर देते हैं; क्योंकि संत-महात्माओंके हृदयमें ठाकुरजी विराजमान रहते हैं, और जो हरदम भगवान्‌का ही भजन, ध्यान, चिन्तन करते रहते हैं, वे वन्दनीय होते हैं। उनके यही व्यापार है, यही काम-धन्धा है और न कोई उनके काम है, न धन्धा है, न देना है, न लेना है। रात-दिन भगवान्‌में मस्त रहते हैं। ऐसे वे प्रभुके प्यारे भक्त होते हैं, जो दूसरोंको भी पवित्र कर देते हैं।

ऐसे उन भगवान्‌का नाम 'राम' है और वे स्वयं नामी कहलाते हैं। दशरथके घर अवतार लेनेवाले भगवान्‌का नाम भी 'राम' है और **'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनीति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते'**—जो निर्गुण-निराकार रूपसे सब जगह रम रहा है, उस परमात्माका नाम भी 'राम' है। 'राम' नाम सगुण और निर्गुण दोनोंका है। यह वर्णन आगे आयेगा। यहाँ तो सामान्य रीतिसे नाम

और नामीकी बात गोस्वामीजी महाराज कहते हैं। भगवान्‌के नाममें रात-दिन लग जाय तो रघुनाथजी महाराजको आना पड़ता है। जैसे, बच्चा अपनी माँको पुकारे तो उसकी माँ बैठी नहीं रह सकती। उसको भागकर बच्चेको गोदमें लेना पड़ता है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २८।१)

सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा ११९।४)

किसी तरहसे नाम लिया जाय, वह फायदा करेगा ही। पर जो आदरके सहित नाम लेता है; गहरी रीतिसे, भीतरके भावसे, प्रेमसे नाम लेता है उसका भगवान्‌पर विशेष असर पड़ता है। जैसे, गीली मिट्टीमें गौका पैर रखा हुआ हो और उसमें जल भरा हो तो उसको पार करनेमें क्या जोर आता है? इधर-से-उधर पैर रखा और पार हुए। भगवन्नामका आदरसहित जप करनेवाला गो-पदकी तरह संसार-समुद्रको तर जाता है।

नाम रूप दुइ ईस उपाधी।
अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।२)

'नाम और रूप—दोनों ईश्वरकी उपाधि हैं; भगवान्‌के नाम और रूप—दोनों अनिर्वचनीय हैं, अनादि हैं। सुन्दर (शुद्ध भक्तियुक्त) बुद्धिसे ही इनका दिव्य अविनाशी स्वरूप जाननेमें आता है।' भगवान्‌का स्वरूप और भगवान्‌का नाम—ये दोनों उनकी उपाधियाँ हैं। नामका चिन्तन करो चाहे स्वरूप-चिन्तन करो, दोनों ही भगवान्‌को खींचनेवाले हैं। योगदर्शनमें भी आया है—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'—ऐसे ईश्वरके लक्षण बताये। **'तस्य वाचकः प्रणवः'** और **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**—उसके नामका जप करना और उसके स्वरूपका स्मरण-चिन्तन करना। भगवान्‌के नामका जप करनेवालेको स्वाभाविक ही भगवान् प्यारे लगते हैं। क्यों प्यारे लगते हैं ? प्रभु हमारे हैं इसलिये प्यारे लगते हैं। उनके नामका जप और उनके स्वरूपका स्मरण करना चाहिये।

'अकथ अनादि सुसामुझि साधी'—भगवान् और भगवान्‌के नामकी महिमा कोई कह नहीं सकता। ये दोनों अनिर्वचनीय हैं, इस कारण कोई इनका कथन नहीं कर सकता। **'रामु न सकहिं नाम गुन गाई'**—रामजी खुद भी अपने नामकी महिमा नहीं गा सकते, फिर दूसरा क्या कह सकता है ? नामकी महिमा कबसे चली, कबसे आरम्भ हुई ? तो कहते हैं भगवान्‌का नाम और नामकी महिमा सदासे है। जैसे भगवान् अनादि हैं, ऐसे उनके नामकी महिमा भी अनादि है। श्रेष्ठ बुद्धिसे अच्छी तरह समझकर उनकी सिद्धि की जाती है। भगवान्‌को और उनके नामको गहरा उतरकर समझना चाहिये। गहरा उतरना क्या है ? जैसे, भोजन कैसा है ? उसका भोजन करनेसे पता लगता है। ऐसे ही नाम-जपमें गहरा उतरकर ठीक तरहसे लग जायँ, तब इसका पता लगता है कि इसमें कितना रस भरा हुआ है ! श्रेष्ठ-बुद्धिके बिना इसमें प्रवेश सम्भव नहीं है।

मलिन बुद्धिवालेका भगवान्‌में प्रेम नहीं होता। उसे भगवान्‌के नाममें रस नहीं आता। जब नाममें रुचि न हो, अच्छा न लगे तो समझना चाहिये कि भीतरमें कोई गड़बड़ी है। जैसे, जिस व्यक्तिको पित्तका बुखार हो, उसे मिश्री कड़वी लगती है तो क्या उपाय करें ? उसको मिश्री-ही-मिश्री खिलाओ। खाते-खाते जब पित्त शान्त हो जायगा फिर मिश्री मीठी लगने लग जायगी। ऐसे ही भगवान्‌का नाम मीठा न लगे तो भी लिये जाओ। नाम-रूपी मिश्रीमें ऐसी शक्ति है कि मिठास पैदा हो

जायगा। जहाँ पित्त शान्त हुआ कि मिठास आया। भगवान्‌का नाम किसी तरह लिये ही जाओ। फिर देखो, कितना विलक्षण आनन्द आता है।

देखो भाई! यह समय पूरा हो जायगा ऐसे ही। अगर भजन करना हो तो जल्दी कर लो। उमरका समय पूरा होनेके बाद फिर कोई वश नहीं चलेगा। जबतक यह श्वासरूपी धौंकनी चलती है, तभीतक ही भजन करके लाभ ले लो। ये श्वास पूरे हो जायेंगे फिर हाथमें कुछ भी नहीं रहेगा।

नाम और रूपकी तुलना

पिछली दो चौपाइयोंमें नाम और नामीकी महिमा बतायी गयी और दोनोंको ही श्रेष्ठ, अकथनीय और अनादि बताया। दोनोंमें गहरे उतरनेसे ही पता लगता है। अच्छी समझ होनेसे दोनोंमें हमारी प्रीति हो सकती है। अब आगे गोस्वामीजी महाराज कह रहे हैं—

को बड़ छोट कहत अपराधू।
सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१। ३)

इन नाम और रूपमें कौन बड़ा है, कौन छोटा है, यह कहना अपराध है। इनके गुणोंका तारतम्य सुनकर साधु पुरुष खुद ही समझ जायेंगे कि वास्तवमें बड़ा कौन है। इसलिये हम इन दोनोंके गुण-भेद बता देंगे, पर छोटा-बड़ा नहीं कहेंगे! गोस्वामीजी महाराज यहाँ ऐसी बात कहते हैं; परंतु आगे उनसे कहे बिना रहा नहीं गया।

निर्गुण-स्वरूपका वर्णन करते समय उपक्रममें **'मोरें मत बड़ नामु दुहू तें'** मेरी सम्मतिमें नाम इन दोनोंसे बड़ा है—ऐसा कहते हैं और निर्गुणकी बातका उपसंहार करते हुए निर्गुण-स्वरूपके लिये अलगसे कहते हैं कि **'निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार'** अर्थात् अभी ऊपर प्रकरणमें जिसका वर्णन किया, उस निर्गुणसे नामका प्रभाव बड़ा है। फिर सगुणका वर्णन करते हुए उपक्रममें **'कहउँ नामु बड़ राम तें'**

अब अपने विचारके अनुसार कहता हूँ कि सगुण भगवान् रामसे भी नाम बड़ा है। इसे सिद्ध करनेके लिये पूरी रामायणमें रामजीने क्या-क्या किया और नाम महाराजने क्या-क्या किया, ऐसे वर्णन करके उपसंहारमें फिर निर्गुण और सगुण दोनोंसे नामको बड़ा बताते हैं। **'ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि'** इस प्रकार नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम, दोनोंसे बड़ा है। ऐसे पहले उपक्रममें दोनोंसे नामको बड़ा बताया और फिर उपसंहारमें भी दोनोंसे नामको बड़ा बताया। बीचमें भी निर्गुणका उपसंहार करते हुए निर्गुणसे बड़ा कहा और सगुणका उपक्रम करते हुए सगुणसे बड़ा कहा। ऐसे बीचमें अलग-अलग एक-एकसे नामको बड़ा बताया। इस प्रकार पूरे प्रकरणमें यही बात चार बार कह दी कि नाम इन दोनोंसे बड़ा है।

यहाँ जो कहा कि **'को बड़ छोट कहत अपराधू'** इसका अर्थ यह हुआ कि 'छोट कहत अपराधू' किसीको किसीसे छोटा बतानेमें अपराध लगता है, पर बड़ा कहनेमें अपराध नहीं लगता है। इसलिये गोस्वामीजी महाराजने नामको चार बार बड़ा कहा, पर किसीको छोटा कभी नहीं कहा है। अब आगे गोस्वामीजी कहते हैं—

देखिअहिं रूप नाम आधीना।
रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।४)

भगवान् अपने नामके अधीन हैं, नामके बिना भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता। भगवान् जब वनमें गये तो लोगोंने पूछा कि ये कौन हैं? कहाँसे आये हैं? ऐसे पूछनेपर परिचय देते हैं कि ये रामजी हैं और साथमें ये लक्ष्मणजी हैं। ऐसे उनका नाम बतानेसे ही उनकी पहचान होती है। इसलिये भगवान्‌से भी भगवान्‌का नाम बड़ा है।

राम! राम!! राम!!!

——::०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—६

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१ । ५-६)

गोस्वामीजी महाराज आगे कहते हैं कि कोई भी वस्तु हथेलीपर रखी होनेपर भी पहचाननेमें नहीं आती, जबतक उसका नाम न जान लिया जाय और रूपके बिना देखे ही नामका स्मरण किया जाय तो उस रूपके प्रति हृदयमें विशेष प्रेम आ जाता है।

बिना नामके जाने अनजान वस्तुको हाथमें ले भी लें तो उसका पता नहीं लगता। नामके जाने बिना वस्तुकी पहचान नहीं होती। ऐसे इन दोनोंमें (रूप और नाममें) अन्वय-व्यतिरेकसे पता लगेगा कि बड़ा-छोटा कौन है। **'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें'** रूप देखे बिना ही केवल नामका स्मरण किया जाय तो भी हृदयमें भगवान् आ जायेंगे। इस प्रकार नाम लेनेसे रूप महाराज तो पधार ही जायेंगे, पर नाम महाराज बिना रूप महाराजके सामने रहते हुए भी उनकी पहचान नहीं होगी। **'आवत हृदयँ सनेह बिसेषें'** विशेष स्नेहके साथ नामका स्मरण करनेसे हृदयमें भगवान् आ जाते हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा १८५ । ५)

जैसे पत्थर रगड़नेसे अग्नि प्रकट हो जाती है, ऐसे ही हृदयके भावसे, स्नेहसे नाम लिया जाय तो भगवान् हृदयमें ही नहीं, बाहर-भीतर सब जगह प्रकट हो जाते हैं। तुलसीदासजी महाराज आगे बताते हैं—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार ॥
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१)

'राम' नाम मणिदीप है। एक दीपक होता है और एक मणिदीप होता है। तेलका दीया दीपक कहलाता है। मणि स्वतः प्रकाश करनेवाली होती है। जो मणिदीप होता है, वह कभी बुझता नहीं। 'राम' नाम क्या है ? तो कहते हैं, यह मणिदीप है। इसे कहाँ रखें ? जीभके ऊपर। वहाँ क्यों ? तो कहते हैं, जैसे दीपकको मकानके दरवाजेके बाहर रख दें, तो भीतर अँधेरा रह जाय और भीतर रख दें, तो बाहर अँधेरा रह जाय। तो क्या किया जाय ? दरवाजेकी देहलीपर रख दो। वहाँपर रखनेसे दोनों जगह प्रकाश हो जाता है। परमात्म-बोध हो जाता है और बाहर भगवान्के दर्शन हो जाते हैं। हवासे यह मणिदीप नहीं बुझता। हवा कितनी ही जोरसे चले ! शरीरकी देहली क्या है ? जीभ है। एक कविने कहा है

'भारति जुक्त भली विधि भासत देहके गेहके द्वार थलीं तूँ' इस जीभको कहा 'तेरेमें सरस्वती निवास करती है।' **'देहके गेहके द्वार थलीं तूँ।'**

'पै जगदीस जपे बिनु सालग नाहक नागनसी निकली तूँ' जैसे बिलमें कोई नागिन हो—सर्पिणीकी ज्यों मुखमें बैठी है, पर **'ना उथली हरि नामको लेन न क्यों रसना बिजली ते जली तूँ'** भगवान्का नाम लेनेके लिये उथली नहीं तो तू बिजलीसे क्यों नहीं जल गयी ?

'रामगुणावली गाये बिना गुणहीन गँवारन क्यों न गली तूँ' हे गँवारन जीभ ! यदि तूने राम गुण नहीं गाया, तो तूँ गली क्यों नहीं ? अब नामको साक्षी बनाते हुए कहते हैं—

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।७-८)

नाम और रूपकी गतिकी कहानी अकथनीय है। वह समझनेमें सुखदायक है; परंतु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुणके बीचमें 'राम' नाम सुन्दर साक्षी है और यह दोनोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाला चतुर दुभाषिया है। यह नाम महाराज सगुण और निर्गुण दोनोंसे श्रेष्ठ चतुर दुभाषिया है।

नाममें पाप-नाशकी शक्ति

जब ही नाम हृदय धर्‌यो भयो पाप को नास।
मानो चिनगी आग की पड़ी पुराने घास ॥

नये घासमें इतनी जल्दी आग नहीं लगती, पुराना घास बहुत जल्दी आगको पकड़ता है। अनेक जन्मोंके, युग-युगान्तरके जितने पुराने पाप पड़े हुए हैं, वे सब तो हैं पुराना घास। उसपर 'राम' नाम रूपी देदीप्यमान अग्नि रख दी जाय तो बेचारे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। नामको अगर हृदयमें धारण कर लिया जाय तो अज्ञान सदाके लिये नष्ट हो जाता है। मानो सब जगह प्रकाश हो जाता है।

सन्तोंकी वाणीमें पढ़ा है कि पापका नाश करनेके लिये नाम महाराजका प्रयोग नहीं करना चाहिये। नाम महाराजसे पापोंके नाशकी कामना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि सूर्य भगवान् आ जायँ तो उनसे प्रार्थना नहीं करते कि महाराज! आप हमारे यहाँ अन्धकारका नाश कर दो, अन्धकारको हटा दो, प्रकाश कर दो, उनसे ऐसे क्या कहना! सूर्योदयकी तैयारी होते ही अन्धकार बेचारा आप-से-आप भाग जाता है। उदय होनेसे पहले ही वह भाग जाता है। ऐसे नाम महाराजके आनेकी

तैयारी हो जाय हृदयमें, तो पाप भाग जाते हैं।

'सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्' जहाँ भगवान्‌की कथा सुननेका मन किया, नाम जप करें, भजन करें, ऐसी इच्छा हुई कि भगवान् उसके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं। 'राम' नाम महाराजकी तरफका विचार हो गया तो उसके आभासमात्रसे पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंमें ताकत नहीं है ठहरनेकी।

पाप वास्तवमें क्या है ? शास्त्रनिषिद्ध आचरण। जिनका शास्त्रोंने निषेध किया कि 'ऐसा मत करो' उसका करना ही पाप है। पाप कोई बलवान् वस्तु नहीं है, यह तो निकृष्ट है। जो निकृष्ट होता है, वह बलवान् भी हो तो उसमें ताकत नहीं होती। जैसे, बड़े-बड़े बलवान् चोर मकानपर चढ़ जाते हैं, भीतर आना चाहते हैं, पर घरमें उसी समय एक बालक रोने लगे, तो वे भाग जाते हैं; क्योंकि उनका हृदय कच्चा होता है। पापी-अन्यायी होनेसे उनमें ताकत नहीं होती। वे भाग जाते हैं बच्चेके रोनेकी आवाजमात्रसे। बेचारे पापमें शक्ति नहीं है। मनुष्यने ही इसको आदर देकर पकड़ रखा है। पाप तो बेचारे भागते हैं। जहाँ सत्संग हो जाय, वहाँ पाप कैसे टिक सकता है ! पर मनुष्य उसको पकड़-पकड़कर रखता है।

पापोंको मनुष्य क्यों रखता है ? इनका आदर क्यों करता है ? क्या पाप सुखदायी हैं ? एक तो इसके भावना यह है कि पाप नष्ट नहीं होंगे। हमारे पाप ऐसे जल्दी नष्ट नहीं होंगे। आप जब संकल्प रखोगे कि ये नष्ट नहीं होंगे तो वे कैसे नष्ट होंगे ? अर्जुनने पूछा कि मनुष्य न चाहता हुआ पाप क्यों करता है ? तो भगवान्‌ने उत्तर दिया **'काम एष क्रोध एष'** काम ही क्रोध है और पाप होनेमें कारण कामना है। इनको पकड़कर रखेंगे तो पाप रहेंगे ही; क्योंकि पापके बापको पकड़ लिया आपने। अब बेटा पैदा होगा ही। पाप किससे होते हैं ? पाप सब होते हैं कामनासे, भोग भोगनेकी और पदार्थोंके संग्रहकी इच्छासे। यह इच्छा है पापका बाप।

पापका बाप

एक प्रसिद्ध कहानी है—एक पण्डितजी काशीसे पढ़कर आये। ब्याह हुआ, स्त्री आयी। कई दिन हो गये। एक दिन स्त्रीने प्रश्न पूछा कि 'पण्डितजी महाराज ! यह तो बताओ कि पापका बाप कौन है ?' पण्डितजी पोथी देखते रहे, पर पता नहीं लगा, उत्तर नहीं दे सके। अब बड़ी शर्म आयी कि स्त्री पूछती है पापका बाप कौन है ? हमने इतनी पढ़ाई की, पर पता नहीं लगा। वे वापस काशी जाने लगे। मार्गमें ही एक वेश्या रहती थी। उसने सुन रखा था कि पण्डितजी काशी पढ़कर आये हैं। उसने पूछा,'कहाँ जा रहे हैं महाराज ?' तो बोले—'मैं काशी जा रहा हूँ।' काशी क्यों जा रहे हैं ? आप तो पढ़कर आये हैं ? तो बोले—'क्या करूँ ? मेरे घरमें स्त्रीने यह प्रश्न पूछ लिया कि पापका बाप कौन है ? मेरेको उत्तर देना आया नहीं। अब पढ़ाई करके देखूँगा कि पापका बाप कौन है ?' वह वेश्या बोली—'आप वहाँ क्यों जाते हो ? यह तो मैं यहीं बता सकती हूँ आपको।'

बहुत अच्छी बात। इतनी दूर जाना ही नहीं पड़ेगा। 'आप घरपर पधारो। आपको पापका बाप मैं बताऊँगी।' अमावस्याके एक दिन पहले पण्डितजी महाराजको अपने घर बुलाया। सौ रुपया सामने भेंट दे दिये और कहा कि 'महाराज ! आप मेरे यहाँ कल भोजन करो।' पण्डितजीने कह दिया—'क्या हर्ज है, कर लेंगे !' पण्डितजीके लिये रसोई बनानेका सब सामान तैयार कर दिया। अब पण्डितजी महाराज पधार गये और रसोई बनाने लगे तो वह बोली—'देखो, पक्की रसोई तो आप पाते ही हो, कच्ची रसोई हरेकके हाथकी नहीं पाते। पक्की रसोई मैं बना दूँ, आप पा लेना' ! ऐसा कहकर सौ रुपये पासमें और रख दिये। उन्होंने देखा कि पक्की रसोई हम दूसरोंके हाथकी लेते ही हैं, कोई हर्ज नहीं, ऐसा करके स्वीकार कर लिया।

अब रसोई बनाकर पण्डितजीको परोस दिया। सौ रुपये और पण्डितजी महाराजके आगे रख दिये और नमस्कार करके बोली—'महाराज ! जब मेरे हाथसे बनी रसोई आप पा रहे हैं तो मैं अपने हाथसे ग्रास दे दूँ। हाथ तो वे ही हैं, जिनसे रसोई बनायी है, ऐसी कृपा करो।' पण्डितजी तैयार हो गये उसकी बातपर। उसने ग्रासको मुँहके सामने किया और उन्होंने ज्यों ही ग्रास लेनेके लिये मुँह खोला कि उठाकर मारी थप्पड़ जोरसे, और वह बोली—'अभीतक आपको ज्ञान नहीं हुआ ? खबरदार ! जो मेरे घरका अन्न खाया तो ! आप जैसे पण्डितका मैं धर्म-भ्रष्ट करना नहीं चाहती। यह तो मैंने पापका बाप कौन है, इसका ज्ञान कराया है।' रुपये ज्यों-ज्यों आगे रखते गये पण्डितजी ढीले होते गये।

इससे सिद्ध क्या हुआ ? पापका बाप कौन हुआ ? रुपयोंका लोभ ! **'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः'** (गीता १६। २१)। काम, क्रोध और लोभ—ये नरकके खास दरवाजे हैं।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

(मानस, लंकाकाण्ड, दोहा ७८। २)

दूसरोंको उपदेश देनेमें तो लोग कुशल होते हैं, परंतु उपदेशके अनुसार ही खुद आचरण करनेवाले बहुत ही कम लोग होते हैं।

मनुष्य ख्याल नहीं करता कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। औरोंको समझाते हुए पण्डित बन जाते हैं। अपना काम जब सामने आता है, तब पण्डिताई भूल जाते हैं, वह याद नहीं रहती।

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति हि।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते॥

दूसरोंको उपदेश देते समय जो पण्डिताई होती है, वही

अगर अपने काम पड़े, उस समय आ जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जाननेकी कमी नहीं है, काममें लानेकी कमी है। हमें एक सज्जनने बड़ी शिक्षाकी बात कही कि आप व्याख्यान देते हुए साथ-साथ खुद भी सुना करो। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं जो बातें कह रहा हूँ तो मेरे आचरणमें कहाँ कमी आती है ? कहाँ-कहाँ गलती होती है ? जो आदमी अपना कल्याण चाहे तो वह दूसरोंको सुननेके लिये व्याख्यान न दे। अपने सुननेके लिये व्याख्यान दे। लोग सुननेके लिये सामने आते हैं, उस समय कई बातें पैदा होती हैं। अकेले बैठे इतनी पैदा नहीं होतीं। इसलिये उन बातोंको स्वयं भी सुनें। केवल औरोंकी तरफ ज्ञानका प्रवाह होता है, यह गलती होती है।

पण्डिताई पाले पड़ी ओ पूरबलो पाप।
ओराँ ने परमोदताँ खाली रह गया आप॥
पण्डित केरी पोथियाँ ज्यूँ तीतरको ज्ञान।
ओराँ सगुन बतावहि आपा फंद न जान॥
करनी बिन कथनी कथे अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यूँ भुसता फिरे सुनी सुनाई बात॥

हमें एकने बताया—'**कूकर ज्यूँ भुसता फिरे**'—इसका अर्थ यह हुआ कि एक कुत्ता यहाँ किसीको देखकर भुसेगा तो दूसरे मोहल्लेके कुत्ते भी देखा-देखी भुसने लग जायेंगे। एक-एकको सुनकर सब कुत्ते भुसने लग जायेंगे। अब उनको पूछा जाय कि किसको भुसते हो ? यह तो पता नहीं। दूसरा भुसता है न, इसलिये बिना देखे ही भुसना शुरू कर दिया। ऐसे ही दूसरा कहता है तो अपने भी कहना शुरू कर दिया। अरे, वह क्यों कहता है ? क्या शिक्षा देता है ? उसका क्या विचार है ? सुनी सुनायी बात कहना शुरू कर देनेसे बोध नहीं होता।

इसलिये मनुष्यको अपनी जानकारी अपने आचरणमें लानी चाहिये।

भजनमें दिखावा

भगवान्‌का नाम प्रेमपूर्वक लेता रहे, नेत्रोंसे जल झरता रहे, हृदयमें स्नेह उमड़ता रहे, रोमांच होता रहे तो देखो, उनमें कितनी विलक्षणता आ जाती है, पर वही दूसरोंको दिखानेके लिये, दूसरोंको सुनानेके लिये करेंगे तो उसका मूल्य घट जायगा। यह चीज औरोंको दिखानेकी नहीं है। धन तिजोरीमें रखनेका होता है। किसीने एक सेठसे पूछा—'तुम घरमें रहते हो या दूकानमें ? कहाँ सोते हो ?' तो सेठने कहा—'हम हाटमें सोवें बाटमें सोवें, घरमें सोवें, सोवें और न भी सोवें।'

अगर हम कहें कि दूकानमें सोते हैं तो घरमें चोरी कर लेगा ! घरमें सोनेकी कहें तो दूकानमें चोरी कर लेगा। अर्थ यह हुआ कि तुम चोरी करने मत आना। लौकिक धनके लिये इतनी सावधानी है कि साफ नहीं कह सकते हो कि कहाँ सोते हैं ? और नामके लिये इतनी उदारता कि लोगोंको दिखावें ! राम, राम, राम ! कितनी बेसमझी है ! यह क्या बात है ? नामको धन नहीं समझा है। इसको धन समझते तो गुप्त रखते।

एक राजा भगवान्‌के बड़े भक्त थे, वे गुप्त रीतिसे भगवान्‌का भजन करते थे। उनकी रानी भी बड़ी भक्त थी। बचपनसे ही वह भजनमें लगी हुई थी। इस राजाके यहाँ ब्याहकर आयी तो यहाँ भी ठाकुरजीका खूब उत्सव मनाती, ब्राह्मणोंकी सेवा, दीन-दुखियोंकी सेवा करती; भजन-ध्यानमें, उत्सवमें लगी रहती। राजा साहब उसे मना नहीं करते। वह रानी कभी-कभी कहती कि 'महाराज ! आप भी कभी-कभी राम-राम—ऐसे भगवान्‌का नाम तो लिया करो।' वे हँस दिया करते। रानीके मनमें इस बातका बड़ा दुःख रहता कि क्या करें, और सब बड़ा अच्छा है। मेरेको सत्संग, भजन, ध्यान करते हुए मना

नहीं करते; परन्तु राजा साहब स्वयं भजन नहीं करते।

ऐसे होते-होते एक बार रानीने देखा कि राजासाहब गहरी नींदमें सोये हैं। करवट बदली तो नींदमें ही 'राम' नाम कह दिया। अब सुबह होते ही रानीने उत्सव मनाया। बहुत ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया; बच्चोंको, कन्याओंको भोजन कराया, उत्सव मनाया। राजासाहबने पूछा—'आज उत्सव किसका मना रही हो ? आज तो ठाकुरजीका भी कोई दिन विशेष नहीं है।' रानीने कहा—'आज हमारे बहुत ही खुशीकी बात है।' क्या खुशीकी बात है ? 'महाराज ! बरसोंसे मेरे मनमें था कि आप भगवान्‌का नाम उच्चारण करें। रातमें आपके मुखसे नींदमें भगवान्‌का नाम निकला।' निकल गया ? 'हाँ' इतना कहते ही राजाके प्राण निकल गये। 'अरे मैंने उमरभर जिसे छिपाकर रखा था, आज निकल गया तो अब क्या जीना ?'

गुप्त अकाम निरन्तर ध्यान सहित सानन्द।
आदर जुत जपसे तुरत पावत परमानन्द॥

ये छः बातें जिस जपमें होती हैं, उस जपका तुरन्त और विशेष माहात्म्य होता है। भगवान्‌का नाम गुप्त रीतिसे लिया जाय, वह बढ़िया है। लोग देखें ही नहीं, पता ही न लगे—यह बढ़िया बात है, परंतु कम-से-कम दिखावटीपन तो होना ही नहीं चाहिये। इससे असली नाम-जप नहीं होता। नामका निरादर होता है। नामके बदले मान-बड़ाई खरीदते हैं, आदर खरीदते हैं, लोगोंको अपनी तरफ खींचते हैं—यह नाम महाराज़की बिक्री करना है। यह बिक्रीकी चीज थोड़े ही है ! नाम जैसा धन, बतानेके लिये है क्या ! लौकिक धन भी लोग नहीं बताते, खूब छिपाकर रखते हैं। यह तो भीतर रखनेका है, असली धन है।

माई मेरे निरधनको धन राम।
रामनाम मेरे हृदयमें राखूं ज्यूं लोभी राखे दाम॥

दिन दिन सूरज सवायो उगे, घटत न एक छदाम।
सूरदास के इतनी पूँजी, रतन मणि से नहीं काम॥

यह अपने हृदयकी बात है। मेरे निर्धनका धन यही है। कैसा बढ़िया धन है यह ! अन्तमें कहते हैं यह जो रत्न-मणि, सोना आदि है, इनसे मेरे मतलब नहीं है। ये पत्थरके टुकड़े हैं। इनसे क्या काम ! निर्धनका असली धन तो 'राम' नाम है।

'धनवन्ता सोइ जानिये जाके 'राम' नाम धन होय।' यह धन जिसके पास है, वही धनी है। उसके बिना कंगले हैं सभी।

'सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति।'

करोंड़ों रुपये आज पासमें हैं, पर ये दोनों आँखें सदाके लिये जिस दिन बन्द हो गयीं, उस दिन कुछ नहीं है। सब यहाँका यहीं रह जायगा।

'सुपना सो हो जावसी सुत कुदुम्ब धन धाम।'

यह स्वप्नकी तरह हो जायगा। आँख खुलते ही स्वप्न कुछ नहीं और आँख मिचते ही यहाँका धन कुछ नहीं।

स्थूल बुद्धिवाले बिना समझे कह देते हैं कि 'राम' नामसे क्या होता है ? वे बेचारे इस बातको जानते नहीं, उन्हें पता ही नहीं है। इस विद्याको जाननेवाले ही जानते हैं भाई ! सच्ची लगन जिसके लगी है, वह जानता है। दूसरोंको क्या पता ? **'जिसके लागी है सोई जाने दूजा क्या जाने रे भाई'** भगवान्‌का नाम लेनेवालोंका बड़े-बड़े लोकोंमें जहाँ जाते हैं, वहाँ आदर होता है कि भगवान्‌के भक्त पधारे हैं। हमारा लोक पवित्र हो जाय। भगवन्नामसे रोम-रोम' कण-कण पवित्र हो जाता है, महान् पवित्रता छा जाती है। ऐसा भगवान्‌का नाम है। जिसके हृदयमें नामके प्रति प्रेम जाग्रत् हो गया, वह असली धनी है। इससे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। वह खुद ऐसा विलक्षण हो जाता है कि उसके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे दूसरोंपर असर पड़ता है। नाम लेनेवाले

सन्त-महात्माओंके दर्शनसे शान्ति मिलती है। अशान्ति दूर हो जाती है, शोक-चिन्ता दूर हो जाते हैं और पापोंका नाश हो जाता है। जहाँ वे रहते हैं, वे धाम पवित्र हो जाते हैं और जहाँ वे चलते हैं, वहाँका वायुमण्डल पवित्र हो जाता है।

प्रह्लादपर संत-कृपा

प्रह्लादजी महाराजपर नारदजीकी कृपा हो गयी। इन्द्रको हिरण्यकशिपुसे भय लगता था। हिरण्यकशिपु तपस्या करने गया हुआ था। पीछेसे इन्द्र उसकी स्त्री कयाधूको पकड़कर ले गया। बीचमें नारदजी मिल गये। उन्होंने कहा—'बेचारी अबलाका कोई कसूर नहीं है, इसको क्यों दुःख देता है भाई!' इन्द्रने कहा—'इसको दुःख नहीं देना है! इसके गर्भमें बालक है। अकेले हिरण्यकशिपुने हमारेको इतना तंग कर दिया है, अगर यह बालक पैदा हो जायगा तो बाप और बेटा दो होनेपर हमारी क्या दशा करेंगे। इसलिये बालक जन्मेगा, तब उसे मार दूँगा, फिर काम ठीक हो जायगा।'

नारदजीने कहा, 'इसका बेटा तेरा वैरी नहीं होगा।' नारदजीकी बात सब मानते थे। इन्द्रने मान ली। ठीक है महाराज! कयाधूको छोड़ दिया। नारदजीने बड़े स्नेहसे उसको अपनी कुटियापर रखा और कहा कि 'बेटी! तू चिन्ता मत कर। तेरे पति आयेंगे, तब पहुँचा दूँगा।' वह जैसे अपने बापके घर रहे, वैसे नारदजीके पास रहने लगी। नारदजीके मनमें एक लोभ था कि मौका पड़ जाय तो इसके गर्भमें जो बालक है, इसको भक्ति सिखा दें। यह संतोंकी कृपा होती है। कयाधूको बढ़िया-बढ़िया भगवान्‌की बातें सुनाते, पर लक्ष्य रखते उस बालकका। वह प्रसन्नतासे सुनती और गर्भमें बैठा बालक भी उन बातोंको सुनता था। नारदजीकी कृपासे गर्भमें ही उसे ज्ञान हो गया।

माता रह्यो न लेश नारदके उपदेशको।
जो धार्‌यो हि अशेष गर्भ मांही ज्ञानी भयो॥

प्रह्लादजीको कितना कष्ट दिया ! कितना भय दिखाया ! परंतु उन्होंने नामको छोड़ा नहीं। प्रह्लादजीको रस आ गया, ऐसे नामको कैसे छोड़ा जाय ? शुक्राचार्यजीके पुत्र प्रह्लादजीको पढ़ाते थे। राजाने उनको धमकाया कि तुम हमारे बेटेको बिगाड़ते हो। यह प्रह्लाद हमारे वैरीका नाम लेता है। यह कैसे सीख गया ? प्रह्लादको पूछा—'तुम्हारे यह कुमति कहाँसे आयी ? दूसरोंका कहा हुआ करते हो कि स्वयं अपने मनसे ही ! किसने सिखा दिया ?' प्रह्लादजी कहते हैं—'जिसको आप कुमति कहते हो, यह दूसरा कोई सिखा नहीं सकता, न स्वयं आती है। संत-महापुरुष, भगवान्‌के प्यारे भक्तोंकी जबतक कृपा नहीं हो जाती, तबतक इसे कोई सिखा नहीं सकता।'

प्रेम बदौं प्रहलादहिको जिन पाहनतें परमेश्वरु काढ़े ॥

प्रेम तो प्रह्लादजीका है, जिन्होंने पत्थरमेंसे रामजीको निकाल लिया। जिस पत्थरमेंसे कोई-सा रस नहीं निकलता, ऐसे पत्थरमेंसे रसराज श्रीठाकुरजीको निकाल लिया। **'पाहनते परमेश्वरु काढ़े'** थम्भेमेंसे भगवान् प्रकट हो गये। थम्भे अपने यहाँ भी बहुतसे खड़े हैं। थम्भा तो है ही, पर प्रह्लाद नहीं है। राक्षसके घरके थम्भोंसे ये अशुद्ध थोड़े ही हैं ? अपवित्र थोड़े ही हैं, पर जरूरत प्रह्लादकी है—**'प्रकर्षेण आह्लादः यस्य स प्रह्लादः'**। इधर तो मार पड़ रही है, पर भीतर खुशी हो रही है, प्रसन्नता हो रही है। भगवान्‌की कृपा देख-देखकर हर समय आनन्द हो रहा है। ऐसे हम भी प्रह्लाद हो जायँ।

आपत्ति आवे, चाहे सम्पत्ति आवे, हर समय भगवान्‌की कृपा समझें। भगवान्‌की कृपा है ही, हम मानें तो है, न मानें तो है, जानें तो है, न जानें तो है। पर नहीं जानेंगे, नहीं मानेंगे, तो दुःख पायेंगे। भीतरसे प्रभु कृपा करते ही रहते हैं। बच्चा चाहे रोवे, चाहे हँसे, माँकी

कृपा तो बनी ही रहती है, वह पालन करती ही है। बिना कारण जब छोटा बच्चा ज्यादा हँसता है तो माँके चिन्ता हो जाती है कि बिना कारण हँसता है तो कुछ-न-कुछ आफत आयेगी। ऐसे आप संसारकी खुशी ज्यादा लेते हो तो रामजीके विचार आता है कि यह ज्यादा हँसता है तो कोई आफत आयेगी। यह अपशकुन है।

राम ! राम !! राम !!!

——::०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—७

नाम रूप गति अकथ कहानी।
समुझत सुखद न परति बखानी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।७)

नाम और रूप (नामी) की जो गति है, इसका जो वर्णन है, ज्ञान है, इसकी जो विशेष कहानी है, वह समझनेमें महान् सुख देनेवाली है; परंतु इसका विवेचन करना बड़ा कठिन है। जैसे नामकी विलक्षणता है, ऐसे ही रूपकी भी विलक्षणता है। अब दोनोंमें कौन बड़ा है, कौन छोटा है—यह कहना कैसे हो सकता है! भगवान्‌का नाम याद करो, चाहे भगवान्‌के स्वरूपको याद करो, दोनों विलक्षण हैं। भगवान्‌के नाम अनन्त हैं, भगवान्‌के रूप अनन्त हैं, भगवान्‌की महिमा अनन्त है और भगवान्‌के गुण अनन्त हैं। इनकी विलक्षणताका वाणी क्या वर्णन कर सकती है! **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' 'मन समेत जेहि जान न बानी'** मन भी वहाँ कल्पना नहीं कर सकता। बुद्धि भी वहाँ कुण्ठित हो जाती है तो वर्णन क्या होगा?

नामीके दो स्वरूप

अब आगे नामीके दो स्वरूपोंका वर्णन करते हैं। पहले अन्वय-व्यतिरेकसे नामकी महिमा और नामको श्रेष्ठ बताया। अब कहते हैं—

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१।८)

परमात्मतत्त्वके दो स्वरूप हैं—एक अगुण स्वरूप है और एक सगुण स्वरूप है। नाम क्या चीज है ? तो कहते हैं—**'अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी'** नाम महाराज निर्गुण और सगुण परमात्माके बीचमें सुन्दर साक्षी हैं और दोनोंका बोध करानेवाले चतुर दुभाषिया हैं। जैसे, कोई आदमी हिन्दी जानता हो, पर अंग्रेजी नहीं जानता और दूसरा अंग्रेजी जानता हो,पर हिन्दी नहीं जानता तो दोनोंके बीचमें एक आदमी ऐसा रख दिया जाय, जो दोनों भाषाओंको जानता हो, परस्परकी बात एक दूसरेको समझा दे, वह दुभाषिया होता है। ऐसे नाम महाराज दोनोंके बीचमें दुभाषिया हैं। **'चतुर दुभाषी'** इसका तात्पर्य हुआ कि केवल सगुणको निर्गुण और निर्गुणको सगुण बता दे—यह बात नहीं है; किन्तु नाम महाराजका आश्रय लेनेवाला जो भक्त है, उसको ये नाम महाराज सगुण और निर्गुणका ज्ञान करा देते हैं, यह विशेषता है।

संसारका दुभाषिया एकके भावोंको दूसरेके प्रति समझा देता है और दूसरेके भावोंको उसके प्रति कह देता है—इस तरहसे नाम महाराज नाम जपनेवालेको दोनोंका ज्ञान करा देते हैं कि निर्गुण तत्त्व क्या है, और सगुण तत्त्व क्या है! ऐसा चतुर दुभाषिया है, जो निर्गुण-सगुण दोनोंका ज्ञान करा दे। मानो भगवन्नाम जपनेसे सगुण और निर्गुण दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। गोस्वामीजी महाराजने और एक जगह लिखा है कि **'हियँ निरगुन नयनन सगुन'** हृदयमें निर्गुणका ज्ञान हो जाता है और बाहर नेत्रोंसे सगुणका दर्शन हो जाता है।

अब कहते हैं कि हम निर्गुण तत्त्वको ही जानना चाहते हैं तो निर्गुण तत्त्वको जनानेमें 'राम' नाम बहुत ही चतुर है। आपको निर्गुण

तत्त्व ठीक समझा देगा। जिसकी ऐसी भावना है कि हम सगुणके दर्शन चाहते हैं, प्रेम चाहते हैं, भगवान्‌की कृपा, गुण, प्रभाव आदिको जानना चाहते हैं तो नाम महाराज सगुण भगवान्‌के दर्शन करा देंगे। जो दोनोंके ठीक तत्त्वको जानना चाहें कि सगुण तत्त्व क्या है और निर्गुण तत्त्व क्या है तो उनको दोनोंके तत्त्वको जना देंगे—ऐसे विलक्षण नाम महाराज हैं।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २१)

तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि भीतर और बाहर दोनों जगह उजाला चाहते हो तो 'राम' नामरूपी मणिदीपको जीभरूपी देहलीपर रख दो। तो क्या होगा कि नाम महाराज बाहर तो साक्षात् धनुषधारी सगुण भगवान्‌के स्वरूपका दर्शन करा देंगे और भीतरमें परमात्मतत्त्वका तथा अपने स्वरूपका बोध करा देंगे। इस प्रकार बाहर और भीतर दोनों जगह ज्ञानका उजाला करा देते हैं।

हमारे बहुतसे विचित्र-विचित्र दर्शनशास्त्र हैं। न्याय, सांख्य, योग, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा—ये छः आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं। इनके सिवाय और भी बौद्ध, जैन, ईसाई, यवन आदिके अनेक दर्शन हैं, इनके अनेक सिद्धान्त हैं। इन दर्शनोंमें आपसमें कई मतभेद हैं। परमात्मतत्त्व क्या है ? प्रकृति क्या है ? कई दर्शन परमात्मा, जीवात्मा और जगत् इन तीनोंको लेकर चलते हैं। इनमें कई-कई परमात्माको छोड़कर जीवात्मा और जगत् दोको ही लेकर चलते हैं। चार्वाक शरीरको लेकर चलता है। ऐसे अनेक दार्शनिक भेद हैं, परंतु जो परमात्मतत्त्वको जानना चाहते हैं और आत्मतत्त्वको भी जानना चाहते हैं तो उनको नाम महाराज जना देते हैं। शबरीके प्रसंगमें भगवान्‌ने यह कहा है—

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥

(मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ३६।९)

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌के दर्शन होना और चीज है, निज-स्वरूपका ज्ञान और चीज है। ऐसे देखा जाय तो एक ही तत्त्व मिलता है, परंतु इसमें भी दार्शनिकोंने और भेद माना है। कोई द्वैत मानते हैं, कोई अद्वैत मानते हैं। द्वैतमें भी विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और अचिन्त्यभेदाभेद—ऐसे वैष्णवोंके मत हैं। सब मतोंका अगर कोई ज्ञान करना चाहे तो नामकी ठीक निष्ठापूर्वक शरण लेनेसे नाम महाराज सबका ज्ञान करा देते हैं। ऐसे देखा जाय तो सगुण और निर्गुणके अन्तर्गत सब सम्प्रदाय आ जाते हैं।

ज्ञानी भक्त

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२।१-२)

ब्रह्माजीके बनाये हुए इस प्रपञ्च (दृश्य जगत्) से भलीभाँति छूटे हुए वैराग्यवान् मुक्त योगी पुरुष इस नामको ही जीभसे जपते हुए (तत्त्वज्ञानरूपी दिनमें) जागते हैं और नाम तथा रूपसे रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, अनामय ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं।

संसारमें जितने जीव हैं, वे सब नींदमें पड़े हुए हैं। जैसे नींद आ जाती है तो बाहरका कुछ ज्ञान नहीं रहता, इसी तरह परमात्माकी तरफसे जीव प्रायः सोये हुए रहते हैं। परमात्मा क्या हैं, क्या नहीं हैं—इस बातका उनको ज्ञान नहीं है। इसका जो कोई ज्ञान करना चाहते

हैं और अपने स्वरूपका बोध भी करना चाहते हैं, वे योगी होते हैं। मानो उनका संसारसे वियोग होता है और परमात्माके साथ योग होता है। वे जीभसे नाम-जप करके जाग जाते हैं। उनको सब दीख जाता है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(गीता २ । ६९)

मानो साधारण मनुष्य परमात्मतत्त्वकी तरफसे बिलकुल सोये हैं। जैसे अँधेरी रातमें दीखता नहीं, ऐसे उनको भी कुछ नहीं दीखता, पर संयमी पुरुष उसमें जागते हैं। जिसमें सभी प्राणी जाग रहे हैं, मेरा-तेरा कहकर बड़े सावधान होकर संसारका काम करते हैं, संसारके तत्त्वको जाननेवाले मुनिकी दृष्टिमें वह रात है। ये लोग अपनी दृष्टिसे इसे जागना भले ही मानें; परंतु बिलकुल सोये हुए हैं, उनको कुछ होश नहीं है। वे समझते हैं कि हम तो बड़े चालाक, चतुर और समझदार हैं। यह तो पशुओंमें भी है, पक्षियोंमें भी है, वृक्षोंमें भी है, लताओंमें भी है और जन्तुओंमें भी है। खाना-पीना, लड़ाई-झगड़ा, मेरा-तेरा आदि संसारभरमें है। इसमें जागना मनुष्यपना नहीं है। मनुष्यपन तो तभी है, जब परमात्म-स्वरूपको जान लें अर्थात् उसमें जाग जायँ। उसे कैसे जानें ? उसका उपाय क्या है ? परमात्माके नामको जीभसे जपना शुरू कर दें और परमात्माको चाहनेकी लगन हो जाय तो वे जाग जाते हैं।

नाम-जपसे सब कुछ मिलता है। हृदयसे जो चाहना होगी, वह चीज उसको मिल जायगी। जैसे कल्पवृक्षके नीचे बैठकर मनुष्य जो कामना करता है, वह कामना पूरी होती है, ऐसे ही यदि हृदयमें नाम-जपकी सच्ची लगन होगी तो नाम महाराज उसी तत्त्वको जना देंगे। इसलिये वह जाग जायगा। जागनेसे क्या होगा ? जो अनुपम ब्रह्मसुख है, उसका वह अनुभव कर लेगा। ब्रह्मसुख कैसा होता है ? उसकी कोई

उपमा नहीं है। भोजन करनेसे जैसे तृप्ति होती है, ऐसा वह सुख नहीं है। सम्पत्ति, वैभव मिलनेसे एक खुशी आती है, इसकी उस सुखसे तुलना नहीं कर सकते। ब्रह्मसुखमें कभी भी किञ्चिन्मात्र कमी नहीं आ सकती। दुःख नजदीक नहीं आ सकता। नाम जपनेवाले उस सुखका अनुभव कर लेते हैं।

'अकथ अनामय नाम न रूपा'—अभी पहले कहा था कि नाम और रूप अकथनीय हैं। अब कहते हैं वह जो निर्गुण ब्रह्मसुख है, वह भी अकथनीय है। निर्गुण और सगुण दोनों अकथनीय हैं और इनके नामकी महिमा भी कथनमें नहीं आ सकती। तात्पर्य क्या निकला? लौकिक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि तो सांसारिक पदार्थोंका वर्णन और दर्शन कराते हैं, परंतु परमात्माकी तरफ चलनेमें ये सब कुण्ठित हो जाते हैं; क्योंकि परमात्मा इनका विषय नहीं है। परमात्मतत्त्व प्रकृतिसे भी अतीत है। प्रकृतिका वर्णन दार्शनिक लोगोंने किया है; परंतु प्रकृतिका वर्णन भी पूरा नहीं हो सकता। जो साधन हमें प्राप्त हैं, उनमें सबसे बढ़िया बुद्धि है, वह बुद्धि भी प्रकृतितक नहीं पहुँच पाती। प्रकृतिके कार्यों (शरीर, मन, इन्द्रियाँ) में बुद्धि काम करती है, पर कारणमें अर्थात् प्रकृतिमें काम नहीं करती। जैसे, मिट्टीसे बना हुआ घड़ा है, वह कितना ही बड़ा बना हो, सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने भीतर समा लेगा क्या? क्या घड़ेमें पूरी पृथ्वी भरी जायगी? नहीं भरी जा सकती। ऐसे प्रकृतिके कार्य—मन, बुद्धि आदि प्रकृतिको ही अपने कब्जेमें नहीं ला सकते, फिर प्रकृतिसे अतीत परमात्मातक कैसे पहुँच सकते हैं?

परमात्मा अनामय है अर्थात् विकार रहित है। उसमें विकार संभव नहीं है। उसका न नाम है, न रूप है। उसका स्वरूप देखा जाय तो काला, पीला या सफेद—ऐसा नहीं है। उसको जाननेके लिये उसका नाम रखकर सम्बोधित करते हैं; क्योंकि हमलोग नाम-रूपमें

बैठे हैं, इसलिये उसको ब्रह्म कहते हैं। संतोंने उसके विषयमें कहा है—

न को रस भोगी। न को रहत न्यारा।
न को आप हरता। न को कर्तु व्यवहारा॥ १॥
ज्युं देख्या त्युं मैं कह्या। काण न राखी काय।
हरिया परचा नामका। तन मन भीतर थाय॥

वहाँ तुरीय पद भी नहीं है, वहाँ मोक्ष, मुक्ति भी नहीं है, बन्धन भी नहीं है। ऐसा अलौकिक तत्त्व है ! तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि जीभसे नाम-जप करके उस ब्रह्मसुखका स्वयं अपने-आपमें जहाँ नाम पहुँचता ही नहीं, वहाँ अनुभव कर लेते हैं।

दार्शनिकोंका जहाँ विचार हुआ है, वहाँ शब्दमें अचिन्त्य शक्ति मानी है। जीभ वागिन्द्रिय है, उससे 'राम-राम' ऐसे जपकी क्रिया होती है, पर इस नाम-जपमें इतनी अलौकिक शक्ति है कि ज्ञानेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियोंसे आगे अन्तःकरण और अन्तःकरणसे आगे प्रकृति और प्रकृतिसे अतीत परमात्म-तत्त्व है, उस परमात्म-तत्त्वको यह नाम महाराज जना दे, ऐसी इसमें शक्ति है। 'शब्द'में अचिन्त्य शक्ति होनेसे मोहका नाश हो जाता है। साधारण रीतिसे अपने अनुभवमें भी देखते हैं कि कोई गहरी नींदमें सोया हुआ है तो सोते समय सभी इन्द्रियाँ मनमें, मन बुद्धिमें, बुद्धि प्रकृतिमें अर्थात् अविद्यामें लीन हो जाती हैं, तब गाढ़ नींद आती है। गाढ़ नींदमें सभी इन्द्रियाँ लीन हो जाती हैं, किसी इन्द्रियका कोई ज्ञान नहीं; परंतु उस आदमीका नाम उच्चारण करके पुकारा जाय तो वह आदमी उस अविद्यामेंसे जग जाता है।

विचार करो—नामका सम्बन्ध तो कर्णेन्द्रियके साथ है। कर्णेन्द्रियपर गाढ़ नींदमें इतने पर्दे आ जाते हैं; परंतु नाममें—शब्दमें वह अचिन्त्य, अलौकिक शक्ति है, जो अविद्यामें लीन हुई बुद्धि, बुद्धिमें लीन हुई कर्णेन्द्रिय; उस कर्णेन्द्रियके द्वारा सुनाकर सोते हुएको

जगा दे। शब्दमें इतनी शक्ति है कि जो सम्पूर्ण जीवोंका मालिक परमात्म-तत्त्व है, उस परमात्म-तत्त्वका केवल जीभसे नाम जपनेसे अनुभव करा दे।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२। ३-४)

अब दूसरे भक्तोंकी बात बताते हैं कि जो 'गूढ़ गति'—मानो सबसे गूढ़ बातको जानना चाहते हैं, जिनके यह जाननेकी मनमें है कि हम भी उस परमात्म-तत्त्वको जानें, जो कि सबसे गूढ़ तत्त्व है, उसके लिये कहा कि जीभसे नामजप करेंगे तो उस तत्त्वको वे जान लेंगे। अब साधकके विषयमें कहते हैं कि साधक अगर लौ लगाकर नाम-जप करता है तो वह सिद्ध हो जाता है। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राकाम्य, वशिता आदि जो आठ सिद्धियाँ हैं, उन सब सिद्धियोंको वह पा लेता है।

जपहिं नामु जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२। ५)

जो दुःखी, संतप्त होता है और संकटसे छूटना चाहता है, वह आर्त होकर व्याकुलतापूर्वक नामका जप करता है तो उसके सब संकट मिट जाते हैं। वह सुखी हो जाता है। ऐसे भगवान्‌के नामकी महिमा कही।

चार प्रकारके भक्त

राम भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२। ६)

अब कहते हैं, चार प्रकारके भगवान्‌के भक्त हैं। चारों ही बड़े सुकृती हैं, अनघ (पापरहित) हैं और सब-के-सब उदार हैं।

(१) **'नाम जीहँ जपि... ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा'**—ये परमात्माको जाननेवाले ज्ञानी भक्त हैं, (२) **'जाना चहहिं गूढ़ गति'**—ये जिज्ञासु हैं, (३) **'साधक नाम जपहिं'**—ये अर्थार्थी हैं और (४) **'जपहिं नामु जन आरत भारी'**—ये आर्त भक्त हैं। इनमें ज्ञानी भक्त परमात्म-तत्त्वका अनुभव कर लेता है। उसके लिये कोई काम बाकी नहीं रहता, वह ब्रह्मसुखका अनुभव कर लेता है। जो परमात्म-तत्त्वको जानना चाहते हैं, वे जिज्ञासु भक्त हैं। वे नाम-जपसे परमात्म-तत्त्वको जान लेते हैं। जो धन-सम्पत्ति, वैभव चाहते हैं, उसके लिये साधना करते हैं, ऐसे अर्थार्थी भक्तको भी नाम-जपसे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। दुःखको दूर करना चाहता है, तो दुःखी होकर नाम-जप करनेसे आर्त भक्तका भी दुःख दूर हो जाता है। गीतामें भी आया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(७। १६)

भगवान् कहते हैं कि सब-के-सब अर्थात् चारों प्रकारके भक्त सुकृती हैं। यहाँ तुलसीदासजीने भी इनको सुकृती बताया है और ये अनघ और उदार भी हैं। यही बात गीतामें भी आयी है—**'उदाराः सर्व एवैते'** (७। १८)। ऐसे ये चारों प्रकारके भक्त उदार हैं, चारों ही अनघ—पापरहित हैं और चारों-के-चारों सुकृती हैं।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।

(गीता ७। २३)

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

(गीता ९। २५)

देवताओंका यजन (पूजन) करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, भूत-प्रेतोंका यजन करनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरा यजन करनेवाले मेरेको ही प्राप्त होते हैं। आर्त हो चाहे अर्थार्थी हो, चाहे कोई क्यों न हो, भगवान्‌के साथ सम्बन्ध हो जानेके बाद किसीका भी पतन नहीं होता।

'तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।'

भगवान्‌के भजनमें लगनेवालेका किसी रीतिसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध हो जायगा तो वह कल्याण करनेवाला ही होगा।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा।
ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२।७)

चारों प्रकारके भक्तोंके नामका ही आधार होता है। चतुर वही कहलाता है, जो बहुत-सी चीजोंमेंसे सार-सार चीज ले लेता है। उनके खोज रहती है कि सबमें सार चीज क्या है? हम किसका आश्रय लें, जिससे हमारा दुःख भी दूर हो जाय, धन भी हमें मिल जाय और हमारी जिज्ञासा भी पूरी हो जाय। ज्ञानीके किसी तरहकी कामना नहीं रहती, वह निष्काम होता है। इसलिये भगवान्‌को वह (ज्ञानी) विशेष प्यारा होता है। नाम ऐसा विलक्षण है कि चाहे आर्त हो, चाहे अर्थार्थी हो, चाहे जिज्ञासु हो, उसकी कामनापूर्ति कर देता है और केवल कामनापूर्ति ही नहीं, वह भगवान्‌की प्राप्ति भी करा देता है। ज्ञानी भक्तोंके लिये ऐसा आया है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

आत्माराम मुनि अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर मस्त रहते हैं। उनमें किसी तरहकी किञ्चिन्मात्र भी इच्छा नहीं रहती। अपने स्वरूपमें स्थित रहना और परमात्माको प्राप्त करना—इसमें थोड़ा-सा फर्क है। अपने

स्वरूपमें स्थिर होनेपर भी कल्याण हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है, परंतु परमात्म-स्वरूपको जाननेसे एक विलक्षण प्रेम प्रकट होता है। वह प्रेम सगुण और निर्गुण दोनोंमें आता है। परमात्म-तत्त्वकी भूखके बिना प्रेम प्रकट नहीं होता। ऐसे तो जिज्ञासुमें, अर्थार्थीमें और आर्तमें भी प्रेम रहता है, परंतु विशेष शुद्ध प्रेम तो परमात्माके सन्मुख होनेसे ही होता है।

आत्माराम पुरुष किसी कामनाको लेकर भगवान्‌की भक्ति नहीं करते हैं, पर दूसरे भक्त कामनासे ही भक्ति करते हैं। जैसे आर्त भक्त दुःख दूर करनेके लिये भजन करते हैं और अर्थार्थी भक्त धनके लिये और अणिमा आदि सिद्धियोंके लिये भजन करते हैं और जिज्ञासु परमात्म-तत्त्वको जाननेके लिये भजन करते हैं। '**इत्थम्भूतगुणो हरिः**' भगवान् ही ऐसे विलक्षण गुणवाले हैं। जिन पुरुषोंकी किञ्चिन्मात्र कामना स्वप्नमें भी नहीं है, उनका चित्त भगवान्‌में आकृष्ट हो जाता है। उनकी भक्ति अहैतुकी होती है।

आर्त भक्तोंमें गजेन्द्रका नाम लिया जाता है। ग्राहने जब गजेन्द्रको पकड़ लिया तो पहले उसने अपने साथवाले हाथी-हथिनियोंपर भरोसा रखा और बहुत वर्षोंतक लड़ता रहा, पर जब किसीका सहारा नहीं रहा और बेचारा डूबने लगा तो उसने अनन्यतासे प्रभुको याद किया और आर्त होकर पुकारने लगा। '**प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्**' पहले जन्ममें शिक्षा पाया हुआ स्तोत्र था। उसको इतना ही याद आया कि कोई एक परमात्मा है जो सबका मालिक है। आपत्तिमें भी पुकारा जाता है तो वह रक्षा करता है, ऐसा ज्ञान हुआ।

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्-
मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥

भागवतमें गजेन्द्र मोक्ष आता है। उसमें वर्णन आता है कि

गजेन्द्रने भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान नहीं किया। सगुण है कि निर्गुण है, साकार है कि निराकार है, धनुषधारी है कि वंशीधारी है, वह चक्रधारी है कि चतुर्भुजधारी है, कैसा है, ऐसे किसी रूप विशेषका ध्यान नहीं किया। वह कहता है—'**यःकश्चनेशः**'—'कोई एक ईश्वर, जो सबका मालिक है।' '**बलिनोऽन्तकोरगात्**' महान् बलवान् अन्तक है मानो साँप खानेको दौड़ रहा है। मौत जिसके पीछे पड़ी हुई है। ऐसे '**प्रचण्डवेगात्**' मौतका बड़ा भारी प्रचण्ड वेग है। '**प्रपन्नं यद्भयात् परिपाति**' मृत्यु सम्पूर्ण संसारका नाश करती है, वह मृत्यु भी जिससे भयभीत होकर दौड़ती है; उस मृत्युके भयसे शरणागतवत्सल उसकी रक्षा करता है, जो भयभीत होकर उसके शरण होता है। ऐसे वह सब तरहके भयसे रक्षा करनेवाला है। '**अरणं तमीमहि**' उस शरणागत-वत्सल परमात्माके हम शरण हैं। भगवान् प्रकट हो करके उनका दुःख दूर कर देते हैं।

आदमीके जब आफत आती है, तब उसकी वृत्ति संसारसे हटती है और संसारसे हटते ही भीतर प्रकाश होता है। संसारमें मन लगानेसे अँधेरा होता है। आफत आनेसे जग जाता है, जैसे, आदमी नींदमें सोया हुआ हो और उसके सुई चुभोई जाय तो वह जग जाता है। ऐसे आपत्तिमें आदमी जग जाता है। जो भजन नहीं करते हैं, उनपर जब आफत आती है, तब उनको होश हो जाता है और वे भगवान्‌की तरफ लग जाते हैं; परंतु जो आफत आनेपर नहीं चेतते और भजन नहीं करते, उनके लिये क्या कहा जाय?

ध्रुवजीकी विमाताने राजाकी गोदसे उनको नीचे उतार दिया और कहने लगी—'चल यहाँसे, तू लायक नहीं है। राजाकी गोदमें बैठना था तो मेरी कोखसे पैदा होता।' वे रोने लगे और अपनी माँके पास गये। माँने भी कहा—'बात तो ठीक है बेटा! तेरी छोटी माँने जो कहा, वह ठीक ही है। तूने और मैंने भजन किया नहीं, इस कारण

आज यह दशा हुई है।' तब ध्रुव बोला—'मैं अब भजन करूँगा।' वे राजगद्दीकी वासना लेकर भजन करने गये, इसलिये अर्थार्थी भक्त कहलाये।

जिज्ञासु भक्तोंमें उद्धव, अर्जुन आदिके नाम लिये जाते हैं। एकादश स्कन्धमें भगवान्‌ने उद्धवजीको उपदेश दिया। उस उपदेशको 'उद्धवगीता' कहते हैं। अर्जुनको भगवान्‌ने जो उपदेश दिया, उसे भगवद्‌गीताके नामसे कहते हैं। ये दोनों (उद्धव और अर्जुन) जिज्ञासु भक्त कहलाते हैं।

जो नित्य-निरन्तर परमात्म-तत्त्वमें ही रहते हैं, जिनके कोई कामना नहीं, ऐसे ज्ञानी भक्त शुकदेवजी हुए हैं। शुकदेवजी बारह वर्षतक गर्भवासमें ही रहे। उनके मनमें विचार आया कि बाहर आते ही भगवान्‌की माया घेर लेगी और मैं फँस जाऊँगा। इस कारण वे भीतर ही भगवान्‌के भजनमें लगे रहे। जब नारदजीने भगवान्‌से आश्वासन दिलवाया,तब वे बाहर आये और जन्मते ही घरसे निकल गये। व्यासजी महाराज 'पुत्र! पुत्र!!' आवाज देते चले जा रहे थे। पहाड़ोंसे वापस 'पुत्र! पुत्र!!' आवाज आयी। मानो सबके एक हुए शुकदेवजी मुनि हैं, वे उस समय वृक्षोंमेंसे बोल उठे—'**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः**' ऐसे सबके हृदयमें विराजमान ज्ञानी भक्त शुकदेवजीको सूतजी नमस्कार करते हैं।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

व्यासजीके बुलानेपर भी शुकदेवजी वापस नहीं आये। जंगलमें ही भजन-स्मरणमें लग गये। व्यासजी महाराजने भागवत ग्रन्थ बनाया और अपने ब्रह्मचारियोंको सिखाने लगे। एक बार कुछ ब्रह्मचारियोंसे कहा कि पुष्प, समिधा आदि यज्ञके लिये ले

आओ। वे उस जंगलमें वहाँ चले गये, जहाँ व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी बैठे भजन-ध्यान कर रहे थे। वहाँपर ब्रह्मचारी ऐसे श्लोक पढ़ने लगे—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है। बकासुरकी बहन पूतनाने अपने स्तनोंमें कालकूट जहर लगा लिया। जिस जहरका स्पर्श हो जाय तो बच्चा मर जाय, ऐसा भयंकर जहर लगाकर मारनेकी इच्छासे वह पूतना आयी और बालरूप भगवान् कृष्णके मुखमें जहर भरा हुआ स्तन दे दिया। महान् नीचा आचरण करनेवाली उस असाध्वीको वह गति मिली, जो धाय माँको मिलती है। धाय माँ प्यारपूर्वक पालन करती है। बालकको स्नेहपूर्वक दूध पिलाती है।

'जसुमति की गति पाई
लालजी रो मुख देखनने आई'

यशोदाजीको जो गति मिलनेवाली थी, वह उस पूतनाको भी दे दी। इसलिये ऐसा कौन दयालु होगा, जिसके हम शरण जावें!

ऐसे श्लोक जब शुकदेवजीने सुने तो उन ब्रह्मचारियोंसे पूछा कि ये कहाँके श्लोक हैं? तो बताया कि भागवतके श्लोक हैं। 'भागवत जैसा ग्रन्थ कहाँ है, जिसमें ऐसे दयालुका वर्णन है?' उन्होंने कहा कि हम व्यासजी महाराजके पास भागवतजी पढ़ते हैं। अब तो शुकदेवजी बोले—'हम भी पढ़ेंगे।' **'कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिम्'** अब उनको क्या करना, जानना और पाना बाकी था। उनके काम बाकी रहा ही नहीं। पर ऐसे शुद्ध ज्ञानी भक्त भी भगवान्‌के गुणोंको सुनकर आकृष्ट हो जाते हैं। इसलिये भगवान्‌को सर्वथा निष्काम होनेके कारण ज्ञानी भक्त

विशेष प्रिय हैं।

जिसके कुछ भी चाहना नहीं है, वह क्या करे? तो कहते हैं, उसको भजन करना चाहिये। दूसरेको पूछा कि तुम्हें क्या चाहिये? 'हमें सब तरहके लोक-परलोकके सुख चाहिये।' तो 'राम-राम' करो। 'सब तरहका सुख और कोई नहीं दे सकता।' किसीसे पूछा— 'आप क्या चाहते हो?' 'हम तो अपना कल्याण चाहते हैं। मुक्ति हो जाय और कोई इच्छा नहीं है तो क्या करना चाहिये?' 'राम-राम करनेमें लग जाओ।' भागवतमें आया है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

गुणोंको देखकर हम किसीसे स्नेह करते हैं तो वह स्नेह उसके गुणोंसे हुआ, उस व्यक्तिसे नहीं हुआ। जैसे, दुकानदार अपनी दुकानकी वस्तुओंको सजाकर रखते हैं और उनको अपनी वस्तुएँ अच्छी भी लगती हैं। बार-बार साफ करते रहते हैं, जिससे लोगोंका चित्त खिंच जाय। ऐसे खूब सजाकर रखते हैं। पैसे आते ही उसे निकालकर दे देते हैं। ऐसा क्यों? वह वस्तुओंकी सजावट थोड़े ही करता है। सजावट पैसोंके लिये ही थी। ऐसे ही वस्तुओंसे प्रेम दीखता है, पर उसका प्रेम पैसोंसे रहता है।

ऐसे कोई मिनिस्टरका आदर, बड़ाई करे, दासता भी करे तो मतलब क्या है? परमिट लेना है या व्यापार आदि अपने कामके लिये आज्ञा लेनी है। उसको मिनिस्टरसे मतलब नहीं है, मतलब है अपने कामसे। दीखनेमें और जगह प्रेम दीखे भले ही, पर जो मतलब सिद्ध करना होता है, उसीको लेकर प्रेम होता है। ऐसे आर्त और अर्थार्थी भगवान्‌का भजन तो करते हैं, पर किसीको दुःख दूर करवाना है, किसीको अर्थ (धन) चाहिये। जिज्ञासु कुछ जानना

चाहता है। इन तीनोंके साथ कुछ-न-कुछ कामना लगी हुई है, पर ज्ञानी केवल भगवान्‌में लगा हुआ है। इसलिये वह भगवान्‌को विशेष प्यारा लगता है। ऐसे चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन हुआ।

राम ! राम !! राम !!!

——::०::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—८

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२।८)

चारों युगोंमें और चारों ही वेदोंमें भगवान्‌के नामका प्रभाव है; परंतु कलियुगमें नामका प्रभाव विशेष है। भक्तोंके लिये भगवान्‌के नामका ही आधार है। इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है। कलियुगके आनेपर भगवान्‌ने विशेष कृपा कर दी कि सभी साधनोंकी शक्तिको नाम महाराजमें लाकर रख दी।

'नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिः'

भगवान्‌ने अपनी पूरी-की-पूरी शक्ति नाम महाराजमें रख दी। इसमें विलक्षणता यह रखी कि **'स्मरणे न कालः'** नाम जपनेके लिये कोई समय नहीं बाँधा। कोई पात्र विशेषकी बात नहीं कही, कोई विधि विशेषकी बात नहीं, कोई जपे और कैसे ही जपे, किसी तरहसे भगवन्नाममें लग जाय।

उद्धारका सुगम उपाय

सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें आदमी शुद्ध होते थे, पवित्र होते थे, वे विधियाँ जानते थे, उन्हें ज्ञान होता था, समझ होती थी, उनकी आयु बड़ी होती थी। कलियुगके आनेपर इन सब बातोंकी कमी आ गयी, इसलिये जीवोंके उद्धारके लिये बहुत सुगम उपाय बता दिया।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि भव उतरहिं पारा॥

संसारसे पार होना चाहते हो तो नामका जप करो।

जुगति बताओ जालजी राम मिलनकी बात।
मिल जासी ओ मालजी थे राम रटो दिन रात॥

रात-दिन भगवान्‌के नामका जप करते चले जाओ। हरिरामदासजी महाराज भी कहते हैं—

जो जिव चाहे मुकुतिको तो सुमरिजे राम।
हरिया गेले चालतां जैसे आवे गाम॥

जैसे रास्ते चलते-चलते गाँव पहुँच ही जाते हैं, ऐसे ही 'राम-राम' करते-करते भगवान् आ ही जाते हैं, भगवान्‌की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। इसलिये यह 'राम' नाम बहुत ही सीधा और सरल साधन है।

रसनासे रटबो करे आठुं पहर अभंग।
रामदास उस सन्त का राम न छाड़े संग॥

संत-महापुरुषोंने नामको बहुत विशेषतासे सबके लिये प्रकट कर दिया, जिससे हर कोई ले सके; परंतु लोगोंमें प्रायः एक बात हुआ करती है कि जो वस्तु ज्यादा प्रकट होती है, उसका आदर नहीं करते हैं। **'अतिपरिचयादवज्ञा'**—अत्यधिक प्रसिद्धि हो जानेसे उसका आदर नहीं होता। नामकी अवज्ञा करने लग जाते हैं कि कोरा 'राम-राम' करनेसे क्या होता है ? 'राम-राम' तो हरेक करता है। टट्टी फिरते बच्चे भी करते रहते हैं। इसमें क्या है ! ऐसे अवज्ञा कर देते हैं।

हमारे भाई-बहनोंमें यह विचार उठता है कि हमारेको कोई विशेष साधन बताया जाय, और जब उनको कहते हैं कि ऐसे प्राणायाम करो, ऐसे बैठो, ऐसे आहार-विहार करो तो कह देंगे—'महाराज ! ऐसे तो हमारेसे होता नहीं, हम तो साधारण आदमी हैं, हम गृहस्थी हैं, निभता नहीं है, क्या करें ? यह तो कठिन है।' फिर 'राम-राम' करो तो वे

कहेंगे कि 'राम-राम' हरेक बालक भी करते हैं। 'राम-राम'में क्या है? अब कौन-सा बढ़िया साधन बतावें? अगर विधियाँ बतावें तो होती नहीं हमारेसे, और 'राम-राम' तो हरेक बालक ही करता है। 'राम-राम'में क्या है! यह जवाब मिलता है। अब आप ही बताओ उनको क्या कहा जाय!

परमात्म-तत्त्वसे विमुख होनेका यह एक तरहसे बढ़िया तरीका है। भगवन्नामके प्रकट हो जानेसे नाममें शक्ति कम नहीं हुई है। नाममें अपार शक्ति है और ज्यों-की-त्यों मौजूद है। इसको संतोंने हम लोगोंपर कृपा करके प्रकट कर दिया; परंतु लोगोंको यह साधारण दीखता है। नाम-जप साधारण तभीतक दीखता है, जबतक इसका सहारा नहीं लेते हैं, इसके शरण नहीं होते हैं। शरण कैसे होवें? विधि क्या है?

शरण लेनेकी विधि नहीं होती है। शरण लेनेकी तो आवश्यकता होती है। जैसे, चोर-डाकू आ जायँ, मारने-पीटने लगें, ऐसी आफतमें आ जायँ तो पुकारते हैं कि नहीं, 'मेरी रक्षा करो, मुझे बचाओ' ऐसे चिल्लाते हैं। कोई लाठी लेकर कुत्तेके पीछे पड़ जाय और वहाँ भागनेकी कहीं जगह नहीं हो तो बेचारा कुत्ता लाठी लगनेसे पहले ही चिल्लाने लगता है। यह चिल्लाना क्या है? वह पुकार करता है कि मेरी रक्षा होनी चाहिये। उसके पुकारकी कोई विधि होती है क्या? मुहूर्त होता है क्या?

'हरिया बंदीवान ज्यूं करिये कूक पुकार।'

शरणागति सुगम होती है, जब अपनेपर आफत आती है और अपनेको कोई भी उपाय नहीं सूझता, तब हम भगवान्‌के शरण होते हैं। उस समय हम जितना भगवान्‌के आधीन होते हैं, उतना ही काम बहुत जल्दी बनता है। इसमें विधिकी आवश्यकता नहीं है। बालक माँको पुकारता है तो क्या कोई विधि पूछता है, या मुहूर्त पूछता है कि इस समयमें रोना शुरू करूँ, यह सिद्ध होगा कि नहीं होगा अथवा ऐसा समय बाँधता है कि आधा घण्टा रोऊँ या दस मिनट रोऊँ; वह तो माँ

नहीं मिले, तबतक रोता रहता है। इस माँके मिलनेमें सन्देह है। यह माँ मर गयी हो या कहीं दूर चली गयी हो तो कैसे आवेगी ? पर ठाकुरजी तो **'सर्वतः श्रुतिमल्लोके'** सब जगह सुनते हैं। इसलिये 'हे नाथ ! हे नाथ ! मैं आपकी शरण हूँ'—ऐसे भगवान्‌के शरण हो जायँ, उनके आश्रित हो जायँ। इसमें अगर कोई बाधक है तो वह है अपनी बुद्धिका, अपने वर्णका, अपने आश्रमका, अपनी योग्यता-विद्या आदिका अभिमान। भीतरमें उनका सहारा रहता है कि मैं ऐसा काम कर सकता हूँ। जबतक यह बल, बुद्धि, योग्यता आदिको अपनी मानता रहता है, तबतक सच्ची शरण हो नहीं सकता। इसलिये इनके अभिमानसे रहित होकर चाहे कोई शरण हो जाय और जब कभी हो जाय, उसी वक्त उसका बेड़ा पार है।

नाम-वन्दनाके प्रकरणमें नामकी महिमाका प्रकरण चल रहा है। उसमें चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन हुआ। अब गोस्वामीजी महाराज प्रेमी भक्तका वर्णन करते हैं—

नाम-प्रेमी भक्त

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २२)

वे भगवान्‌की भक्तिरूपी रसमें रात-दिन तल्लीन रहते हैं, उनके किसी तरहकी किञ्चिन्मात्र भी कोई कामना नहीं है। उनके कामना क्यों नहीं है ? नामरूपी एक बड़ा भारी अमृतका सरोवर है। उन्होंने अपने मनको उस सरोवरकी मछली बना लिया है और हर समय भगवान्‌के प्रेममें ही मतवाले रहते हैं। भगवान्‌के प्रेमी भक्त चाहे परमात्माके तत्त्वको न जानें, पर फिर भी वे परमात्माकी तरफ स्वाभाविक ही आकृष्ट हो जाते हैं। उनके मनमें और कोई इच्छा नहीं रहती है। न तत्त्वको जाननेकी इच्छा है, न अपने दुःख दूर करनेकी इच्छा है और न कोई धनादि पदार्थोंकी इच्छा है। किसी

तरहकी कोई लिप्सा नहीं। केवल भगवान्‌के प्रेममें रात-दिन मस्त रहते हैं। इसके अलावा उनके कोई विचार ही नहीं उठता। उन्हें कुछ करना बाकी नहीं, कुछ जानना बाकी नहीं और कुछ पाना बाकी नहीं। स्वाभाविक ही उनका भगवान्‌में प्रेम रहता है।

प्रेमकी बात बड़ी अलौकिक है। संतोंने इसे पञ्चम पुरुषार्थ माना है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने जाते हैं। मनुष्योंमें कई तो अर्थ—धन चाहते हैं, कई सुख चाहते हैं कि संसारका सुख मिल जाय, भोग—कामना पूर्ति चाहते हैं, कई धर्मका अनुष्ठान करना चाहते हैं, इसके लिये दान-पुण्यादि करते हैं और कई मुक्ति चाहते हैं, अपना कल्याण चाहते हैं। ये चार तरहकी चाहनाएँ होती हैं। इनमें किसीके कोई चाहना मुख्य और कोई गौण रहती है, पर इन चाहनावालोंसे प्रेमी भक्त विलक्षण ही होते हैं। वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इनमेंसे कुछ भी नहीं चाहते। वे भगवान्‌में तल्लीन रहते हैं।

अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

'भक्तिरसायन' ग्रन्थमें, वेदान्तमें अद्वैत सिद्धान्तके बड़े भारी आचार्य श्रीमधुसूदनाचार्यजी कहते हैं कि जो अद्वैत-मार्गमें चलनेवाले हैं, उनके हम उपास्य हैं, कोई मामूली थोड़े ही हैं। स्वानन्द, ब्रह्मानन्दमें भी पूर्ण हैं, फिर भी हम तो भगवान्‌की तरफ खिंच गये। इस प्रेमको उन्होंने पाँचवाँ पुरुषार्थ माना है। भगवान्‌के प्रेमीकी बात बहुत विलक्षण है।

दार्शनिकोंने विचार बहुत किया है; परंतु प्रेमकी तरफ कम किया है। कई-कई वैष्णवशास्त्रोंमें प्रेमका वर्णन आता है। परंतु 'दर्शन' नाम है अनुभवका। दार्शनिक चीज प्रायः अनुभवकी होती है। प्रेमी लोग अपना अनुभव भी नहीं चाहते हैं। वे भगवान्‌से प्यार करते हैं, केवल

भगवान् मीठे लगते हैं। इसलिये रात-दिन उसीमें मस्त रहते हैं। वे मुक्तिकी भी परवाह नहीं करते हैं। मुक्तिकी परवाह वे करें, जिनके बन्धन है। उनके बन्धन दूसरा है ही नहीं। बन्धन एक भगवान्‌का ही है। विनोदमें संत कहते हैं—

अब तो भोग मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है मुक्ति चरणसे झरती है॥

उनको न तो संसारकी इच्छा ही व्याकुल करती है और न मुक्तिकी इच्छा व्याकुल करती है। भगवान्‌का स्वरूप ही उनके लिये बन्धन है। वह नित्य नया बन्धन प्रिय लगता है। **'दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्।'** मुक्तिमें आनन्द शान्त एकरस रहता है। प्रेममें **'प्रतिक्षणं वर्धमानम्'** प्रतिक्षण आनन्द बढ़ता ही रहता है। भगवान्‌के दर्शन करनेवाले कहते हैं—

'आज अनूप बनी युगल छबि, आज अनूप बनी' युगल सरकारकी छवि आज बड़ी सुन्दर बनी है। ऐसे प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमका आनन्द है। प्रेमकी विशेष लहरें उठती रहती हैं, जिसे प्रेमी लोग ही जानते हैं। अपने स्वरूपको जाननेवाले ज्ञानी-मुक्त लोग उस प्रेमकी विशेषताको नहीं जानते हैं। उन्हें अपने स्वरूपमें ही सम, शान्त, अखण्ड आनन्दका निरन्तर अनुभव होता रहता है।

नाम और नामीकी बात पहले आयी थी जिसमें नामको बड़ा बताया। अब नामीका विवेचन करते हैं कि नामी कितने प्रकारके होते हैं। तो कहते हैं—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३। १)

परमात्मा एक हैं, परंतु उनके स्वरूप दो हैं— एक अगुण अर्थात्

निर्गुण और दूसरा सगुण। दो स्वरूपोंका अर्थ क्या हुआ ? गुणोंसे रहित जिसको देखते हैं, वह अगुण कहलाता है और जिसे गुणोंके सहित देखते हैं, वह सगुण कहलाता है। ये दोनों उस परमात्माके विशेषण हैं। अब कहते हैं—**'अकथ अगाध अनादि अनूपा'** इनका कथन नहीं होता है। पहले भी नाम और नामीको 'अकथ' कहा था। अब यहाँ अगुण और सगुण-दोनों स्वरूपोंको भी अकथ कहते हैं। वाणीके द्वारा ये वर्णनमें नहीं आते। वाणी भी कुण्ठित हो जाती है। 'अगाध'—'गाध' नाम सरोवरके तलका है। ये ऐसे गहरे हैं कि तलका पता नहीं चलता। ये दोनों कबसे हैं ? कहाँसे हैं ? तो कहते हैं 'अनादि'— सदासे हैं और सदा ही रहनेवाले हैं। कालसे जिनका माप-तौल नहीं हो सकता। इतने वर्षोंसे या इतने कल्पोंसे हैं—ऐसी बात नहीं है और 'अनूपा'—इनके लिये कोई उपमा नहीं है। इनको किसकी उपमा दी जाय ! उपमा लगाकर किसीके बराबर नहीं बताये जा सकते।

निर्गुण ब्रह्मसे नामकी श्रेष्ठता

मोरें मत बड़ नामु दुहू तें।
किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३। २)

पहले ऐसा कहकर आये हैं कि कौन बड़ा और कौन छोटा है, यह कहनेमें अपराध है। बड़ा और छोटा कहनेका अवसर आया तो अब अपनी सम्मति साफ कह देते हैं कि मेरे मतमें दोनोंसे बड़ा नाम है। आगे चलकर उपसंहारमें भी यही बात कहते हैं—**'ब्रह्म राम तें नाम बड़।'** क्यों महाराज ! दोनोंसे नाम बड़ा कैसे हुआ ? यदि दोनों स्वरूप भी नामकी तरह अकथ, अगाध, अनादि, अनुपम हैं तो फिर यह नाम इनसे बड़ा कैसे हो गया ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि नाम

महाराजने अपनी शक्ति-प्रभावसे अगुण और सगुण दोनोंको अपने वशमें कर लिया है। मानो नाम जपनेसे निर्गुणका बोध हो जाय और सगुण भी प्रकट हो जाय। इसलिये यह दोनोंसे बड़ा है। अब इसके बाद प्रकरण बाँधकर नामको एक-एक करके दोनोंसे बड़ा बताते हैं। पहले अगुणसे नामको बड़ा बतानेका प्रकरण आरम्भ करते हुए गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की।
कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३।३)

मेरा जो कहना है, उसे कोई प्रौढ़िवाद न माने। किसी बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं, उसे प्रौढ़िवाद कहते हैं। अपने लोगोंमें कहावत है—'जिसका ब्याह उसीका गीत' मानो जिसका मौका आ जाय, उसीकी बड़ाई कर देना, इसको प्रौढ़िवाद कहते हैं। इसलिये गोस्वामीजी महाराज पहले ही कह देते हैं कि सज्जन इस दासकी इस बातको केवल प्रौढ़िवाद न समझें। साहित्यमें जब वर्णन करते हैं तो विशेषतासे उपमा अलंकार आदि लगाकर बहुत विलक्षण वर्णन करते हैं। इस तरहसे यहाँ मैं नहीं कहता हूँ। कोई यह न जाने कि यह बढ़ा-चढ़ाकर कह रहा है। तो 'क्या कहते हो बाबा'!

'कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी' तीन बातें हैं। 'प्रतीति'—एक तो मेरेको ऐसा ही दीखता है और जैसा मेरेको दीखता है, वैसा ही कहता हूँ और एक प्रीति—दीखता तो है परंतु प्रेम वैसा न हो—ऐसी बात नहीं है। नाममें प्रेम भी वैसा ही है और स्वतः मनकी रुचि भी है। गोस्वामीजी महाराज नामके बहुत ज्यादा प्रेमी हैं। नाममें पहलेसे ही इतने रचे-पचे थे कि जन्मते ही 'राम' ऐसा मुँहसे उच्चारण हुआ। इस कारण उनको 'राम बोला' कहते थे। ऐसे वे अपने मनकी बात कहते हैं।

एकु दारुगत देखिअ एकू।
पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३। ४)

भगवान्‌के दो स्वरूप हैं। वे कौन-कौनसे हैं? एक तो है दारुगत। जैसे काठमें आग होती है, दियासलाईमें आग होती है, पत्थरमें आग होती है, पर वह आग दीखती नहीं। ऐसे यह भगवान्‌का अगुणरूप सर्वत्र रहनेवाला है, पर यह दीखता नहीं। दूसरा रूप वह है, जो देखनेमें आता है। जैसे आग जलती हुई दीखती है, वह अग्निका प्रकटरूप है, ऐसे ही सगुण भगवान् अवतार लेकर लीला करते हैं, वह सगुणरूप प्रकट अग्निकी तरह है। भगवान् मनुष्योंकी तरह ही आचरण करते हैं। मनुष्यरूपमें प्रकट होनेके कारण वे प्रत्यक्ष दीखते हैं। एक दीखनेमें न आनेवाला और एक दीखनेमें आनेवाला— दो रूप अग्निके हुए; परंतु अग्नि एक ही तत्त्व है। दीखने और न दीखनेसे आग दो नहीं हुई। ऐसे ही अगुण अर्थात् अप्रकट और सगुण अर्थात् प्रकट—ये दो रूप परमात्माके हुए, परंतु परमात्मा एक ही हैं।

काठमें अथवा दियासलाईमें आग रहती है, वह आग दूसरी है और सुलगती है, वह आग दूसरी है—ऐसा कोई नहीं कह सकता। दोनों एक ही हैं। एक तो दीखती है और एक नहीं दीखती। केवल इतना अन्तर है। ऐसे नहीं दीखनेवाले परमात्माके रूपको अगुण कह देते हैं, दीखनेवाले रूपको सगुण कह देते हैं, पर परमात्मा दो नहीं हैं, तत्त्व एक ही है। इस तत्त्वको समझना ही '**ब्रह्म बिबेकू**' है।

'**उभय अगम जुग सुगम नाम तें**'—दोनों ही परमात्माके रूप अगम्य हैं। इनकी प्राप्ति करना चाहें तो निर्गुणकी प्राप्ति भी कठिन है और सगुणकी प्राप्ति भी कठिन है। इनको जानना चाहें तो अगुण और सगुण दोनोंको जानना कठिन है। इन दोनोंमें भी गोस्वामीजी महाराज आगे चलकर कहेंगे कि सगुणका जानना और भी कठिन है। अवतार लेकर

मनुष्य जैसे चरित्र करते हैं—इस कारण उनको जाननेमें कठिनता है।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ७३ ख)

अगुणरूपको तो हर कोई जान सकता है, पर सगुणरूपको हर कोई नहीं जानता। मनुष्यकी तरह आचरण करते देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके मनमें भी भ्रम हो जाता है। वे भगवान्‌को मनुष्य ही मान लेते हैं। वे कहते हैं, यह तो मनुष्य ही है। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है—'देवता और महर्षि भी मेरे परम अविनाशी भावको नहीं जानते, इसलिये अवतार लेकर घूमते हुए मुझको मूढ़ लोग साधारण मनुष्य मानकर मेरी अवज्ञा करते हैं अर्थात् मेरा तिरस्कार, अपमान, निन्दा करते हैं*।' उन मूर्खोंके सामने हीरा भी पत्थर होता है। न जाननेके कारण वे निन्दा करते हैं। उनकी निंदाका कोई मूल्य नहीं है। कारण कि वे बेचारे जानते नहीं, अनजान हैं।

नामसे निर्गुण-सगुणकी सुलभता

निर्गुणरूपको सुलभ बताया है। दोनों रूपोंको देखा जाय तो निर्गुणका स्वरूप सुगम है। कारण कि निर्गुणस्वरूपमें दोषबुद्धि होनेकी गुँजाइश नहीं है। युक्तियोंसे भी उसकी सिद्धि की जा सकती है। पर सगुणमें दोष बुद्धि होनेकी गुँजाइश है और युक्तियोंसे सिद्ध भी नहीं हो सकता।

परंतु जहाँ साधनाकी चर्चा हुई है, वहाँ गोस्वामीजीने भक्तिके साधनको सुगम बताया है **'सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी'**

---

* **न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।**
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ (१०।२)
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ (९।११)

और ज्ञानके पंथको कृपाणकी धारा बताया है। तलवारकी धारपर चलना बड़ा मुश्किल होता है। इस तरहसे निर्गुणका मार्ग बड़ा कठिन है और सगुण परमात्माका मार्ग अर्थात् उनकी भक्ति सुगम है।

यहाँ कहते हैं कि **'निर्गुन रूप सुलभ अति'** निर्गुणरूपको सुलभ ही नहीं, अत्यन्त सुलभ बताया और सगुणको कोई जानता नहीं, ऐसा कहा। इस कारण कहा जा सकता है कि दोनों बातोंमें विरोध आता है। एक जगह निर्गुणको अति सुलभ बता रहे हैं तो दूसरी जगह **'ग्यान पंथ कृपान कै धारा'**। इसी तरह **'सगुन जान नहिं कोइ'** कह रहे हैं और फिर सुगमता बताकर भक्तिकी महिमा गा रहे हैं।

दोनों बातोंमें विरोध दीखता है; परंतु वास्तवमें विरोध नहीं है। निर्गुणरूप समझनेमें बड़ा सुगम है, उसमें दोषबुद्धि संभव नहीं है। उसे तर्क-वितर्कसे समझा जा सकता है; परंतु सगुणरूपमें दोषबुद्धि हो सकती है तथा तर्क-वितर्क भी वहाँ चलता नहीं। इसलिये सगुणरूपके समझनेमें कठिनता है। परंतु प्राप्तिके मार्गमें चला जाय तो सगुणका मार्ग बड़ा सरल है, सीधा है। सगुण भगवान्की लीला गाकर, पढ़कर, सुनकर मनुष्य बड़ी सरलतासे भगवत्प्राप्ति कर सकता है। निर्गुण पन्थ बड़ा कठिन है, कारण कि देहाभिमानी मनुष्यकी निर्गुण-तत्त्वमें स्थिति होनी बड़ी कठिन है (गीता १२। ५)।

इससे निष्कर्ष निकला कि मार्ग तो सगुणवाला श्रेष्ठ है। साधक उसके द्वारा जल्दी पहुँचता है और विचारसे एवं तर्कसे निर्गुण स्वरूपको सुगमतासे समझ सकते हैं, पर सगुणमें तर्क नहीं चलता। इसलिये अपनी-अपनी जगह दोनों ही श्रेष्ठ हैं, दोनों ही उत्तम हैं।

खास बात यह है कि पात्रके अनुसार सुगमता और कठिनता होती है। जिसकी रुचि, योग्यता, विश्वास निर्गुणमें है, उसके लिये निर्गुणरूप सुलभ है। जिसकी रुचि, विश्वास, योग्यता सगुणमें है, उसके लिये सगुण सुलभ है। इसलिये पात्रके अनुसार दोनों ही कठिन हैं और दोनों

ही सुगम हैं। जो जिसको चाहता है, वह उसके लिये सुगम हो जाता है।

एक रूपकी प्राप्ति होनेपर दोनोंकी ही प्राप्ति हो जाती है, फिर कोई-सा भी रूप जानना बाकी नहीं रहता; क्योंकि दोनोंका तत्त्व एक ही है। सगुण और निर्गुण किसी रूपको लेकर साधक साधना करे, अन्तमें दोनोंको जान लेगा। कारण कि तत्त्वतः दोनों एक ही हैं।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें।
कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३।५)

दोनों ही रूप नाम लेनेसे सुगम हो जाते हैं। दोनों अगम हैं मानो बुद्धि वहाँ काम नहीं करती। इस कारण जाननेमें अगम हैं; परंतु '**जुग सुगम नाम तें**' नामसे दोनों सुगम हो जाते हैं अर्थात् अगम होते हुए भी नाम-जप किया जाय तो दोनों ही सुगम हो जायँ। आपने सुना होगा कि कई सगुणरूपके और कई निर्गुणरूपके भक्त हुए हैं, उन्होंने भी 'राम-राम' किया है। जैसे, श्रीगोस्वामीजी आदि वैरागी बाबा लोग सगुण भगवान्‌के उपासक हुए, वे भी 'राम-राम सीताराम राम-राम'—ऐसा करते थे। निर्गुण-साधनामें भी संत मतको माननेवाले भक्त हुए हैं। जैसे, श्रीहरिरामदासजी महाराज, श्रीरामदासजी महाराज—ये रामस्नेही सम्प्रदायमें संत हुए हैं। ये भी 'राम-राम' करते थे। बिलकुल प्रत्यक्ष बात है कि नामसे दोनोंरूप सुगम हो जाते हैं। इसलिये तुलसीदासजी महाराज कहते हैं '**कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें।**' राम और ब्रह्मसे नाम बड़ा है। अगुण ब्रह्म हुआ और सगुण रामजी हुए। इन दोनोंको प्रत्यक्ष करा देनेके कारण नाम दोनोंसे बड़ा हुआ। नामको अगुण-सगुण दोनोंसे बड़ा कहकर गोस्वामीजी निर्गुण प्रकरण प्रारम्भ करते हैं।

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी।
सत चेतन घन आनँद रासी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३।६)

जो दारुगत अग्निकी तरह काष्ठमें व्यापक है और दीखता नहीं है—ऐसे सब संसारमें व्यापक अगुण परमात्मा हैं। वह अगुण स्वरूप है। वह अविनाशी है और व्यापकरूपसे सर्वत्र परिपूर्ण है '**सत चेतन घन आनँद रासी।**' वह सत् है, चेतन है और घन-आनन्द राशि है, मानो सब जगह केवल आनन्द-ही-आनन्द है, आनन्दकी राशि है। उस आनन्दरूप परमात्मासे कोई जगह खाली नहीं है, कोई समय खाली नहीं, कोई वस्तु खाली नहीं, कोई व्यक्ति खाली नहीं, कोई परिस्थिति उससे खाली नहीं। सबमें परिपूर्ण ऐसा अविनाशी वह निर्गुण है। वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, व्यक्ति नष्ट हो जाते हैं, समयका परिवर्तन हो जाता है, देश बदल जाता है; परंतु यह तत्त्व ज्यों-का-त्यों ही रहता है। सब समयमें, सब कालमें, सब देशमें, सब वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें ज्यों-का-त्यों रहता है। इसका विनाश नहीं होता, इसलिये यह सत् है। सत् सबका आश्रय है, आधार है, चित् सबका प्रकाशक है। केवल शुद्धज्ञान-स्वरूप है, इसलिये चित् है और आनन्दकी तो राशि है, घन है मानो बड़ा ठोस है। किसी चीजका उसमें प्रवेश सम्भव नहीं है। लोहेमें तो आग प्रविष्ट हो सकती है; परंतु आनन्दराशिमें कभी दुःख किञ्चिन्मात्र भी प्रविष्ट नहीं हो सकता। परमात्मामें परमात्माके सिवाय और किसी पदार्थका प्रवेश सम्भव ही नहीं है, इतना घन है परमात्मा। इस प्रकार ब्रह्मका स्वरूप बताया। फिर कहते हैं—

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३।७)

संसारमें जितने जीव हैं, उनके हृदयमें आनन्दराशि परमात्मा विराजमान हैं। **'अस प्रभु'** कहनेका तात्पर्य है कि ऐसे आनन्दराशि प्रभुके हृदयमें रहते हुए संसारमें जितने जीव हैं, वे सब-के-सब दीन हो रहे हैं और दुःखी हो रहे हैं। महान् आनन्दराशि भगवान्‌के भीतर रहते हुए दीन हो रहे हैं। आनन्दराशि निर्गुण परमात्मा सबके हृदयमें रहकर भी जीवोंका दुःख दूर नहीं कर सके, दरिद्रता नहीं मिटा सके। परंतु भगवन्नामका यदि यत्नसे निरूपण किया जाय तो वह आनन्द प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है। दुःख और दरिद्रता सर्वथा मिट जाते हैं।

नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३। ८)

निर्गुणतत्त्वमें निरूपणकी मुख्यता है। निरूपण यानी उसका स्वरूप क्या है, उसकी महिमा क्या है, वह तत्त्व क्या है? ठीक गहरा उतरकर तत्त्वको समझा जाय और उसीमें तल्लीन होकर नाम जपा जाय मानो सब जगह परमात्मा परिपूर्ण हैं, ऐसे जपनेसे **'सोउ प्रगटत'**—वह आनन्द प्रकट हो जाता है। इस प्रकार ख्याल रखकर उसका विशेष यत्नपूर्वक निरूपण किया जाय तो निर्गुणतत्त्व आनन्दरूपसे हृदयमें प्रकट हो जाता है। **'कंचन खान खुली घट माहीं रामदासके टोटो नाहीं।'** घटमें, हृदयमें आनन्दकी खान खुल गयी। अब घाटा किस बातका रहा बताओ! भीतरसे ही जब आनन्द उमड़ता है तो सांसारिक सुखकी कामना किञ्चिन्मात्र नहीं रहती। आप कह सकते हैं, ऐसे आनन्दका हमें अनुभव नहीं। ठीक है, आनन्द तो प्रकट नहीं हुआ; परंतु शीत ज्वर कभी आया ही होगा! शीत ज्वर जब आता है, तब भीतरसे सर्दी लगती है, ऊपरसे कई कम्बल, रजाई आदि ओढ़नेपर भी भीतरसे कँपकँपी आती रहती है। बाहर कपड़ा ओढ़नेसे क्या हो! भीतरसे शीत हो, तब बाहरकी गर्मी बेचारी क्या करे! गर्म-गर्म जल भीतर जानेसे कुछ शान्ति हो सकती है,

ऐसे जिसके भीतर आनन्द प्रकट हो जाय, तो उसे बाहरी वस्तुओं, व्यक्तियोंके संयोगसे मिलनेवाले सुखकी आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे बाहरकी प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितिमें भी उसे दुःख नहीं हो सकता। **'यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥'** (गीता ६। २२) बड़े भारी दुःख आनेपर भी किञ्चिन्मात्र दुःख नहीं हो सकता; क्योंकि उसके भीतर आनन्दके फव्वारे छूटते हैं। उसके दर्शन, भाषण, स्पर्श, सङ्गसे आनन्द आता है। उसका नाम लेनेसे आनन्द आता है।

'सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें'—रत्नका मूल्य प्रकट हो जाता है। कैसे ? लाखों रुपयोंका बहुत बड़ा कीमती रत्न हो; परंतु पासमें रहनेपर भी उससे कोई लाभ नहीं मिलता, जबतक उसका मूल्य न ले लिया जाय। पासमें रहनेपर भी उससे रोटी नहीं मिलती, कपड़ा नहीं मिलता, मकान नहीं मिलता, सवारी नहीं मिलती, दवाई नहीं मिलती; पर उस रत्नको बेचकर दाम खड़े कर लिये जायँ तो रुपये खर्च करनेपर किसी बातकी कमी नहीं रहती। अकेला रत्न पड़ा रहे तो कुछ काम नहीं निकलता। ऐसे दरिद्रता दूर नहीं होती। ऐसे ही जबतक वह आनन्द प्रकट नहीं किया जाता, अर्थात् नाम नहीं लिया जाता, तबतक वह आनन्द प्रकट नहीं होता। नामसे वह प्रकट हो जाता है; फिर किसी बातकी कमी नहीं रहती। जाननेसे उसका मूल्य प्रकट होता है।

हमने एक कहानी सुनी है। एक संत बाबा थे। वे कहीं भिक्षाके लिये गये। जाकर आवाज लगायी राम ! राम ! जिसके घर बाबाजी गये थे, वह रोने लग गया। बाबाजीने पूछा, 'भैया ! रोते क्यों हो ?' वह बोला, 'महाराज ! भगवान्ने मेरेको ऐसे ही पैदा कर दिया है। तीन दिन हो गये चूल्हा नहीं जला है। घरमें कुछ खानेको नहीं है। भूखे मरता हूँ। आज संत पधारे, भिक्षा देनेको मन भी करता है, पर देऊँ कहाँसे ?' संतने कहा—'तू घबराता क्यों है ? तू तो बड़ा भारी धनी है। तू चाहे तो त्रिलोकीको धनी बना सकता है।' वह गृहस्थी कहता है—'महाराज ! आप आशीर्वाद दे दें

तो ऐसा हो जाऊँ। अभी तो मेरी परिस्थिति ऐसी है कि मुझे खानेको अन्न नहीं मिलता। आप कहते हैं कि लोगोंको धनी बना सकता है,तो यह कैसे सम्भव है महाराज !'

बाबाने संकेत करते हुए कहा—'वह सामने क्या वस्तु पड़ी है ?' 'वह तो सिलबट्टा है महाराज ! पत्थर है, जब रोटी मिल जाती है तो इस पर चटनी पीस लेते हैं।'बाबा कहते हैं—'वह पत्थर नहीं है, वह पारस है। पारसका नाम सुना है ?' 'हाँ सुना है।' तो पूछा, 'पारस क्या होता है महाराज !' 'लोहेको छुआनेसे सोना हो जाय, वह पारस होता है' 'पर महाराज ! यदि यह पारस होता तो मैं भूखा क्यों मरता ?' संत कहते हैं कि 'तू भूखा इसलिये मरता है कि उसको जानता नहीं। घरमें कुछ लोहा है क्या ?' 'हाँ महाराज ! लोहेका चिमटा है। रसोई बनाते हैं तो चिमटा काममें आता है। ' वह ले आया तथा उसको पारससे छुआया, पर लोहा सोना बना नहीं। बाबाने कहा—'इसपर जमी हुई चटनी, मिर्च, मिट्टी साफ कर दे।' उसे साफ करके छुआया तो चिमटा सोना बन गया। संत बोले, 'बता, अब तू धनी है कि नहीं !' लोहेको सोना बनानेवाला पारस मिल गया, अब धनी होते कितनी देर लगे ! पारस तो पासमें ही था, परंतु जानकारी न होनेसे उसे मामूली पत्थर समझता था। अब वह केवल आप ही धनी नहीं बना, बल्कि चाहे जिसको धनी बना दे।

इसी तरह भगवान्‌का नाम मौजूद है, भगवान् विद्यमान हैं। 'राम' नाम लेते भी हैं; परंतु ऊपर-ऊपरसे लेते हैं, भीतरी भावसे नहीं लेते। निष्कपट होकर सरलतापूर्वक भीतरसे लिया जाय तो नाम महाराज दुनियामात्रका दुःख दूर कर दें। संत-महात्मा, भगवान्‌के प्रेमी भक्त जहाँ जाते हैं, वहाँ दुनियाका दुःख दूर हो जाता है। उनके दर्शन, भाषण, चिन्तनसे दुःख दूर होता है, धन देनेसे दूर नहीं होता। जिनके पास लाखों-करोड़ोंकी सम्पत्ति है, बहुत वैभव है, वे भीतरसे जलते रहते हैं; परंतु नाम-प्रेमी संत-महात्माओंके दर्शनसे वे भी निहाल हो जाते हैं।

संतोंके मिलनेसे शान्ति मिलती है; क्योंकि नाम जपनेसे उनमें आनन्दराशि प्रभु प्रकट हो गये। प्रभुके प्रकट होनेसे उन संतोंमें यह विलक्षणता आ जाती है।

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २३)

सगुणसे नामकी श्रेष्ठता

ऊपर गोस्वामीजीने नामको निर्गुण स्वरूपसे बड़ा बताया और अब अपने विचारके अनुसार सगुण रामसे नामको बड़ा बताते हैं। निर्गुण-स्वरूपका उपक्रम करते हुए '**मोरें मत बड़ नामु दुहू तें।**' दोनोंसे बड़ा बताया और यहाँ बीचमें निर्गुण स्वरूपका उपसंहार करते हुए कहते हैं '**निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।**' इस प्रकार निर्गुणसे नाम बड़ा बताया और यहाँसे आगे सगुण-स्वरूपका उपक्रम करते हुए '**कहउँ नामु बड़ राम तें**' सगुणसे नामको बड़ा बताते हैं। अब ध्यान देना! सगुणसे बड़ा नामको बताते हुए तुलसीदासजी महाराज पूरी रामायणका वर्णन करते हैं। रामजीने क्या किया और नाम महाराजने क्या किया—ऐसे दोनोंकी तुलना करते हैं।

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। १,२)

गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजीने भक्तोंके हितके लिये मनुष्यरूप धारण किया। नाना प्रकारके कष्ट स्वयं सहे और संतोंको सुखी किया। रामजीने भक्तोंके लिये शरीर धारण करके काम किया। जरा गहरा विचार करें! संत कभी दुःखी होते हैं? वे सदा सुखी ही रहते हैं।

सगुण भगवान्‌के दर्शन करके वे विशेष प्रसन्न हो जाते हैं, यह बात तो कह सकते हैं।

दूसरे, भगवान्‌ने स्वयं जा-जाकर उनके यहाँ दर्शन दिये और आप स्वयं वन-वन घूमे, नाना प्रकारके कष्ट सहे; परंतु नाम महाराजको कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। किसी तरहका कष्ट सहन नहीं करना पड़ता। जहाँ हो, वहीं बैठे-बैठे नाम जपनेसे सब प्रकारके मङ्गल हो जाते हैं, आनन्द छा जाता है। भगवान् एक शरीर धारण करके कितने जीवोंको सुखी कर सकते हैं; परंतु नाम लेकर प्रत्येक जीव आनन्द प्राप्त कर सकता है। नाम-जपसे अभक्त भक्त हो जाय। असाधु साधु हो जाय, दुष्ट सज्जन हो जाय, नाम महाराजको जोर पड़ता ही नहीं। बस इतनी-सी शर्त है कि प्रेमसहित, आदरसहित नाम-जप करें। इस प्रकार नाम-जप करनेसे मोदमें, मङ्गलमें निवास हो जाय। उसके सदाके लिये मौज हो जाती है। नाम जपनेवालेके किसी बातकी कमी रहती ही नहीं। प्रश्न उठ सकता है कि फिर लोग क्यों दुःखी हो रहे हैं? इस बातपर विश्वास नहीं करते, इसलिये दुःखी हो रहे हैं। सब-का-सब संसार नाममें विश्वास न करनेके कारणसे मौतके चक्करमें पड़ा है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। ३)

मौतसे बढ़कर संसारमें कोई दुःख नहीं, जिसके आनेपर उस दुःखको सह नहीं सकते, इतना भयंकर दुःख कि प्राण छूट जाते हैं, उस दुःखके रास्तेमें केवल दुःखोंका ही सामना करना पड़ता है। विश्वास न करनेके कारण भगवान्‌के नामका जप करते नहीं। इसलिये मौतके रास्तेमें सब-का-सब संसार जा रहा है। अगर प्रेमसे विश्वास करके नाम-जप किया जाय तो सब-के-सब आनन्दमें मग्न हो जायँ।

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। ३)

आगे गोस्वामीजी कहते हैं—**'राम एक तापस तिय तारी'** जब वे जनकपुरी जा रहे थे तो बीचमें गौतमकी पत्नी अहिल्या पत्थररूपसे पड़ी हुई थी। भगवान् रामजीके चरणकी रज लगनेसे उसका उद्धार हो गया। अब ध्यान देना !

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

इस प्रकार एक-एक शब्दमें रामजीसे नामकी श्रेष्ठता बताते हैं। सगुण रामजीने केवल एक तापस स्त्रीका उद्धार किया। गिनतीमें एक और वह भी तपस्वीकी स्त्री। तपस्वीका आधा अङ्ग अशुद्ध थोड़ा ही होता है! उसको तार दिया, उसका उद्धार कर दिया, इसमें क्या बड़ी बात की! परंतु नाम महाराजने एककी नहीं, करोड़ोंकी; तापसकी नहीं, खलोंकी तथा स्त्री (सुमति) को नहीं, कुमतिको सुधारा। कुमति सुधर जाय तो वह स्वयं दूसरोंका उद्धार करनेवाला बन जाता है। जो केवल अपना ही उद्धार नहीं कर सकता, वह दुनियाका उद्धार करनेवाला संत बन जाता है। अब अहिल्याका उद्धार हो गया तो हमारेको क्या मिला ? नाम जपनेवाला हमारेको भी निहाल कर दे। इतनी महिमा है नाम-जपकी ! तात्पर्य है सगुण रामजीकी अपेक्षा नाम बहुत बड़ा है।

रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। ४, ५)

ऋषियोंका हित करनेके लिये अर्थात् विश्वामित्रजीका यज्ञ पूर्ण

करनेके लिये उनके आश्रममें भगवान् राम पधारे। वहाँ उन्होंने विश्वामित्र ऋषिके हितके लिये सुकेतुराजकी लड़की ताड़काको मारा और उसके बेटेसहित उसकी सेनाको नष्ट कर दिया। यह तो रामजीने किया। अब नाम महाराज क्या करते हैं, इसको बताते हैं कि भगवान्‌के दासके सामने दुराशारूपी ताड़का आ जाय तो 'राम-राम' करते ही ताड़का मर जायगी। भगवन्नाम प्रेमपूर्वक लेनेसे सभी बुरी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। इस ताड़काके दो बेटे बताये हैं—दोष और दुःख। दुराशासे ही दोष और दुःख पैदा होते हैं। दुराशा भीतरसे मिट जाती है तो न दोष बनता है, न दुःख होता है अर्थात् न पाप बनता है तथा न ही पापोंका फल—दुःख होता है। दुराशा मर जाय और इनके बेटे भी मर जायँ। फिर इनकी जो सेना है—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, दम्भ आदि ये कई तरहके राक्षस हैं। 'राम-राम' करनेसे ये सेना भी सब-की-सब खतम हो जाती हैं। यह नाम महाराज सबका नाश कर देते हैं। जैसे सूर्योदय होनेसे रात्रिका नाम-निशान नहीं रहता। रात्रि आती है, तब सब जगह अँधेरा छा जाता है। बाहर और भीतर सब जगह अँधेरा ठसाठस भर जाता है, मानो इतना भर जाता है कि सूई भी भीतर नहीं जावे। सूर्योदय होते ही अँधेरेकी जय रामजीकी हो जाती है अर्थात् अँधेरा विदा हो जाता है।

एक कहानी आती है। एक बार अँधेरेने जाकर ब्रह्माजीसे शिकायत की कि 'महाराज ! सूर्य भगवान् मेरेको टिकने नहीं देते। जिस देशमें मैं जाता हूँ, वहींसे भगा देते हैं। मैं कहाँ जाऊँ ? ऐसा वैर वे मुझसे रखते हैं।' ब्रह्माजीने सूर्यसे पूछा,'सूर्य महाराज ! आप बेचारे अन्धकारको क्यों दुःख देते हैं ?' सूर्यने कहा—'महाराज ! उम्रभरमें मैंने उसको देखा ही नहीं। दुःख देना तो दूर रहा। हमारा और उसका कैसा वैर ?' अब देखें कैसे ! वह सूर्यके सामने आता ही नहीं। ऐसे भगवन्नाम महाराजने दोष, दुःख और दुराशारूपी अँधेरेको देखा ही नहीं। नाम जहाँ आ जाता है, वहाँसे

ये बेचारे सब भाग जाते हैं। रामजीकी अपेक्षा नाम महाराजने कितना बड़ा काम किया !

भंजेउ राम आपु भव चापू।
भव भय भंजन नाम प्रतापू ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। ६)

विश्वामित्र ऋषिका यज्ञ पूरा करके रामजी जनकपुरी पहुँचे। राजा जनकके बड़ी आफत थी। हमारी कन्याका लगन हो जाय, यह बड़ी चिन्ता थी। पुत्रीके विवाहकी चिन्ता माता-पिताके रहती ही है। महाराज जनकने धनुष-यज्ञ रचा। इस धनुषको जो तोड़ देगा, उसके साथ अपनी बेटीको ब्याह दूँगा—ऐसी प्रतिज्ञा की। बड़े-बड़े बलवान् राजालोग आये। रावण, बाणासुर आदि रात्रिमें आकर धनुषको उठानेका उद्योग करके हार चुके थे, इसलिये राजाओंके सामने उसको छूनेकी उनकी हिम्मत ही नहीं पड़ी। 'यों ही क्यों अपनी बेइज्जती कराओ मुफ्तमें, यह टूटनेवाला तो है नहीं।' सबका घमण्ड दूर हो गया।

महाराज जनकके बड़ी चिन्ता हो गयी। वे कहते हैं कि यदि प्रण छोड़ देता हूँ तो बड़ा दोष लगता है। प्रतिज्ञा भङ्ग करना बड़ा पाप है; और यदि प्रण नहीं छोड़ता हूँ तो कन्या कुँआरी रह जाती है। अब क्या करूँ ? ऐसी आफत जनकजीके आ गयी। रामजीने कृपा की। शंकरजीके धनुषको तोड़ दिया। भगवान् रामने जाकर शंकरके चापको तोड़ा, पर नाम महाराजको कहीं जाना नहीं पड़ता, इनका प्रताप ही ऐसा है कि वह संसारके जन्म-मरणके भयको सर्वथा मिटा देता है। यहाँ रामजीने एक शंकरके चापको तोड़ा, पर नाम महाराजका प्रताप ही हजारों, लाखों, करोड़ों मनुष्योंके भव-बन्धनको तोड़ देता है। नाम महाराजके प्रभावसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ (विष्णुसहस्रनाम)

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किए पावन॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। ७)

विवाह कराकर रामजी अयोध्या वापस आ गये। फिर उनको वनवास हुआ। रामजीके लिये कहा गया—'**दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन**' दण्डकवनको शाप था। इस कारण बालू बरस गयी थी और जंगल सब सूख गया था। ऐसा सूखा जंगल था, वह दण्डकवन! भगवान् रामजीके पधारनेसे वह हरा-भरा हो गया, सुहावना हो गया। सब-का-सब जंगल बड़ा सुन्दर हो गया। रामजीने एक जंगलको हरा-भरा कर दिया, पवित्र कर दिया; परंतु '**जन मन अमित नाम किए पावन**' भगवन्नामने अपने अनगिनत जनोंके मनको पवित्र कर दिया। मनरूपी जंगल कितने सूखे पड़े हुए थे जिनकी गिनती नहीं, इतने अमित मन पावन किये! ऐसे रामजीकी अपेक्षा नामजी कितने बड़े हुए!

निसिचर निकर दले रघुनंदन।
नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४। ८)

रामजीने राक्षसोंके समूह-के-समूहका नाश कर दिया। राक्षस बहुत मरे, पर सब नहीं मरे, राजगद्दी होनेपर भी राक्षस रह गये। उनको मारनेके लिये शत्रुघ्नजीको भेजना पड़ा। कई आफत आयी; परंतु नाम महाराजके लिये कहा गया है कि '**नामु सकल कलि कलुष निकंदन**' इन्होंने कलियुगके सारे-के-सारे पापोंका नाश कर दिया। कोई पाप बाकी नहीं रहा, सबको नष्टकर दिया।

अब बोलो! स्वयं राम महाराज बड़े हैं कि नाम महाराज बड़े हैं! ऐसे रामजीके चरणोंकी शरण ले लो अपने तो! जिसे दूसरे किसीकी आशा ही न हो, वह भगवान्‌का प्यारा हो जाता है।

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा १०।८)

यदि कोई दूसरा सहारा रखता है तो उसको भगवान्‌की तरफसे पूरा बल नहीं मिलता। भगवान्‌पर पूरा विश्वास, भरोसा न करके अपनेको भगवान्‌से जितना अलग रख लेता है, भगवान्‌की उतनी चीज उसे नहीं मिलती। इसलिये दूसरेका सहारा छोड़ दें और उनके शरण हो जायँ।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥

राम ! राम !! राम !!!

——::o::——

॥ श्रीहरिः ॥

प्रवचन—१

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २४)

श्रीगोस्वामीजी महाराज सगुणसे भी बढ़कर 'राम' नामकी महिमा बतलाते आ रहे हैं। यहाँ वही प्रकरण चल रहा है। श्रीरघुनाथजी महाराजने तो शबरी, गीध (जटायु) आदि जो सुसेवक थे और जो उनका चिन्तन करते थे, उनको ही मुक्ति दी; परंतु उनके नामने अगनित दुष्टोंका उद्धार कर दिया। नामके गुणोंकी कथा वेदोंमें प्रसिद्ध है।

शबरीके बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा हो रही थी कि 'भगवान् आवें, भगवान् आवें' और वह गीध भी भगवान्‌के चरणोंकी रेखाका चिन्तन करता था। रेखाओंमें वज्र आदिके चिह्न होते हैं, वे रक्षा करनेवाले होते हैं। ऐसे भगवान्‌का चिन्तन करनेवाले दो सेवक 'रामचरितमानस'में मिलते हैं। उनको ही मुक्ति (गति) दी, पर **'नाम उधारे अमित खल'** नामने जिनका उद्धार किया, वे अमित हैं, कोई मित नहीं, उनकी कोई गणना नहीं है। **'बेद बिदित गुन गाथ'**—उनके गुणोंकी गाथाएँ वेदोंमें, शास्त्रोंमें, स्मृतियोंमें, पुराणोंमें, इतिहासोंमें प्रसिद्ध हैं। ऐसे अनेकोंका उद्धार कर दिया।

तीन प्रकारके सखा

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ ।
राखे सरन जान सबु कोऊ ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५ । १)

अब कहते हैं—सुग्रीव और विभीषण दोनों भगवान्‌के मित्र रहे। श्रीरामजीने इन दोनोंको अपनी शरणमें रखा, यह सब कोई जानते हैं। भगवान्‌ने इनको 'सखा' कहा है।

खल मंडली बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥

(मानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ४६। ५)

विभीषणसे भगवान् गले मिलकर पूछते हैं कि 'दिन-रात दुष्टोंकी मंडलीमें बसते हो, ऐसी दशामें, हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है?' ऐसे सुग्रीवको भी अपना सखा मानते हैं। जब विभीषण मिलने आया तो **'कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा'** भगवान्‌ने सुग्रीवसे कहा—बोलो, सखा! तुम्हारी क्या सम्मति है? ऐसे दोनों ही सखा थे। इनको भगवान्‌ने अपनी शरणमें रखा।

ये दोनों ही भयभीत थे बेचारे! सुग्रीव बालीसे डरता था और विभीषणको भी रावणने जोरसे धमकाया, लात भी मारी और कह दिया कि 'मेरे नगरमें रहता है और प्रीति तपस्वी (राम) से करता है। निकल जा यहाँसे।' ऐसे रावणने उसे निकाल दिया तो वह भगवान्‌के शरण आ गया। इन दोनोंको भगवान्‌ने अपने मित्र बना लिये। एक बात याद आ गयी—रामायणमें भगवान्‌के तीन सखा हैं। (१) निषादराज गुह, (२) सुग्रीव और (३) विभीषण। इन तीनोंको सखा बनानेका तात्पर्य क्या है? भगवान् कहते हैं—'मैं सबको सखा बनानेके लिये तैयार हूँ।' तीन तरहके भक्त होते हैं। (१) साधक भक्त होता है, (२) सिद्ध भक्त होता है और (३) विषयी भक्त होता है।

सांसारिक विषयी मनुष्यको भी भगवान् सखा बना लेते हैं, साधक भक्तको भी सखा बना लेते हैं और सिद्ध भक्तको भी सखा बना लेते हैं। इनमें निषादराज गुह सिद्ध भक्त था, जैसे ज्ञानी भक्त होते हैं, परमात्माके प्यारे होते हैं, पूर्णताको प्राप्त—ऐसे सिद्ध भक्त हैं,

निषादराज गुह। विभीषण साधक भक्त है, भगवत्प्राप्तिकी साधना करनेवाला है और सुग्रीव विषयी भक्त है। भगवान्‌की भक्ति करता है, पर करता है विपत्ति आनेपर, दुःख होनेपर और जब दुःख मिट जाता है तो फिर जै रामजीकी ! फिर कोई भक्ति नहीं। सुग्रीवके विषयमें भगवान् रामने लक्ष्मणजीसे कहा—

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी॥

(मानस, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा १८।४)

सुग्रीव भी मेरी सुध भूल गया; क्योंकि उसको राज्य मिल गया, मकान मिल गया, नगर मिल गया, खजाना मिल गया, स्त्री मिल गयी। अब भजन कौन करे ? जब विपत्ति थी, डर था, तब भजन करता था। अब भय मिट गया, मौजसे राज्य करता है, इसलिये मेरेको भी भूल गया।

हनुमान्‌जीने सुग्रीवको रामजीसे मिलनेके लिये कहा—'तुम कर क्या रहे हो !' रामजीने यहाँ प्रवर्षण गिरिपर चातुर्मास (निवास) किया है और तुमने भगवान्‌की बात भुला दी। इतने दिन हो गये, कभी मिलनेतक नहीं गये और सीताजीकी खोज भी तुमने नहीं की। ऐसी बात हनुमान्‌जीने कही। तब उसे कुछ चेत हुआ; परंतु फिर महाराज ! लक्ष्मणजीके सामने रामजीने जोरसे कहा—'सुग्रीव भी मुझे भूल गया है, जिस बाणसे बालिको मारा है, कल उसी बाणसे उसको भी मारना है।' यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले—'महाराज ! वह तकलीफ आपको नहीं देखनी पड़ेगी। मैं अभी जाता हूँ और सब काम कर दूँगा।' तब भगवान्‌ने समझा कि कहीं लक्ष्मण उसे मार न दे। इसलिये कह दिया—'ना, ना, भाई।'

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥

(मानस, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा १८)

'देखो, सुग्रीव हमारा सखा है, मित्र है। भय दिखलाकर ले आना।' भय दिखानेका तात्पर्य क्या है ? ये विषयी भक्त होते हैं, इनमें जब कोई आफत आती है, भय होता है, तब भगवान्‌का भजन करते हैं। भय मिट जाता है तो फिर वैसे ही। इसलिये कहा—'भय दिखाकर ले आना,मारना नहीं।' भय दिखानेके लिये भगवान्‌को यह कहना पड़ा। लक्ष्मणजी जब वहाँ गये तो सुग्रीव भयभीत हो गया। उसने पहले ताराको भेजा कि लक्ष्मणजी आ रहे हैं, इनको राजी करो किसी तरह ही। स्त्रियाँ हैं, बालक हैं, इनको देखकर बड़ोंको दया आ जाती है, एक कृपा आ जाती है। इसलिये ताराको, हनुमान्‌जीको और अंगदको भेजा; क्योंकि वह डर गया। जब लक्ष्मणजी पधारे तो उनको अपनी खाटपर बैठाया। सुग्रीव विषयी था न! तो वहीं रहता था। बैठकमें नहीं, माचे (चारपाई) पर बैठा रहता। इसलिये लक्ष्मणजीको भी वहीं खाटपर बैठाया। इस तरह उनका आदर किया। ये सब विषयीके लक्षण हैं। रामजीसे जाकर मिला तो क्या कहा ? रामजीसे कहा—'महाराज !

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई।
तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥'

(मानस, किष्किन्धाकाण्ड, दोहा २१।४—६)

गीतामें जैसे काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके दरवाजे बताये हैं। उसी तरह सुग्रीवने कहा—**'नारि नयन सर जाहि न लागा'** स्त्रीका नयन बाण जिसको नहीं लगा अर्थात् जो कामके वशमें नहीं हुआ और **'घोर क्रोध तम निसि जो जागा'**—जो घोर

क्रोध-रूपी रात्रिमें जग गया, मानो जिसको क्रोध नहीं हुआ और '**लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।**' लोभकी फाँसी जिसके गलेमें नहीं लगी है। '**सो नर तुम समान रघुराया**' वह तो आपके समान ही है, जो इन दोषोंसे दूर है। ऐसे भगवान्‌के प्यारे भक्त होते हैं। ये गुण किसी साधनसे नहीं होते, आपकी कृपासे ही होते हैं। मैं जो काम, क्रोध और लोभमें फँसा हूँ, इसमें कारण है कि आपने कृपा नहीं की। मेरा दोष नहीं है इसमें। '**तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।**' आपकी कृपासे कोई-कोई पाता है। इसलिये यह हमारेमें अवगुण नहीं, यह अवगुण आपका ही है। विषयी आदमी भोगोंमें फँसे रहते हैं और कह देते हैं—भगवान्‌की माया है। भगवान्‌की मायाने ऐसा कर दिया। इस कारण हम फँस गये, क्या करें? हम तो दूधके धोये शुद्ध हैं। ये जो विषयी-पामर जीव संसारमें रात-दिन भोगोंमें लगे रहते हैं, वे रामजीके ऊपर ही दोषारोपण करते हैं कि हम क्या करें? बताओ जीव बेचारे क्या करें? यह तो भगवान् कृपा करे, तब छूटे।

ऐसे वचन विभीषण या निषादराज गुहके प्रसंगमें कहीं नहीं आयेंगे, क्योंकि ऐसी बात साधक और सिद्ध भक्त नहीं कहते। विषयोंमें डूबे हुए पामर जीव ही ऐसा कहते हैं। निषादराज गुहको तो भगवान्‌से मिलनेमें बड़ा दुःख होता है वह कहता है—

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥

(मानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ९१)

कैकयराजकी पुत्री मंदमति कैकेयीने बड़ी ही कुटिलता की है, जो रघुनन्दन श्रीरामजीको और जानकीजीको सुखके अवसरपर दुःख दिया है, वनवास दे दिया, इस बातसे बड़ा दुःख हुआ। लक्ष्मणजीने वहाँ समझाया कि यह दुःख-सुख कुछ नहीं है ऐसे 'लक्ष्मण-गीता'का वहाँ उपदेश हुआ है। रामजीसे जब निषादराज मिला तो उसने कहा—

'महाराज ! आप हमारे घरपर पधारो। यह आपका ही घर है, बाल-बच्चे सब आपके ही हैं। आप कृपा करो, घरपर पधारो।' तब भगवान्‌ने कहा—'भाई ! इस समय हम गाँवमें किसीके घरपर नहीं जा सकते; क्योंकि हमारी माता कैकेयीने वनवास दे दिया है—'**तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी ॥**' चौदह वर्षका वनवास है, इस कारण हम गाँवमें नहीं जाते हैं। जब विभीषण भगवान्‌के शरण आया तो कहने लगा—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ॥

(मानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ४५)

हनुमान्‌जीके द्वारा मैंने आपका सुयश सुना कि आप जन्म-मरणके भयका नाश करनेवाले हैं। दुःखियोंका दुःख दूर करनेवाले आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपके शरणमें आया हूँ। विभीषणने भगवान्‌पर कोई दोषारोपण नहीं किया। उसके मनमें संकोच था, भय लगता था, इसलिये हनुमान्‌जी महाराजसे भी उसने कहा कि 'महाराज ! क्या मेरे जैसेको भी भगवान् स्वीकार कर लेंगे ?' हनुमान्‌जी कहते हैं—'देखो मेरे जैसेको भी स्वीकार कर लिया है।' भगवान् सबको स्वीकार करते हैं, तुमको भी स्वीकार कर लेंगे, इस प्रकार जब आश्वासन दिया, तब हिम्मत हुई। विभीषण संकोच रखता था और साधन करता था। भगवान्‌ने उसको भी अपना सखा बनाया। सुग्रीव जैसेको भी निषादराज गुहकी तरह अपना सखा बना लिया।

विभीषणने क्या किया कि जब सर्वथा विजय हो गयी और रावण मारा गया, तब विभीषणने भगवान्‌से कहा—'महाराज ! आप घरपर पधारिये।'

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे ॥

(मानस, लंकाकाण्ड, दोहा ११६। ५)

'जिससे युद्धका परिश्रम दूर होवे। मेरा घर पवित्र करो, पधारो।' तो भगवान्‌ने कहा—'भाई! तुम्हारा घर हमारा ही है, यह सच है, पर हमारेको भरतकी याद आ रही है। भरत भी मेरेको याद करता है, इसलिये मेरेको अयोध्या जल्दी पहुँचना है। गाँवमें, घरोंमें मैं नहीं जाता हूँ, इस कारण लक्ष्मणजीको भेजता हूँ, यह राजगद्दी कर देगा। विभीषणने युद्ध समाप्त होनेके बाद घर पधारनेके लिये कहा। जबकि निषादराज गुहने आरम्भमें मिलते ही यह कहा कि आप घरपर पधारो; परंतु बन्दा सुग्रीवने कहा ही नहीं कि आप मेरे घर पधारो। ऐसा विषयी था। फिर भी रामजी तो तीनोंको ही सखा कहते हैं।

भगवान् कहते हैं कि तुम अपने गुण-अवगुणोंकी तरफ मत देखो। केवल मेरे सम्मुख हो जाओ, मेरे पास आ जाओ, बस।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ४४। २)

इसलिये भगवान्‌की शरण ले लो, आश्रय ले लो, उनके सम्मुख हो जाओ। वे सबको सखा बनानेको, सबको अपना बनानेको तैयार हैं। भगवान् एक हाथमें धनुष और एक हाथमें बाण रखते हैं। बाण तो होता है सीधा और धनुष होता है टेढ़ा। वे दोनोंको ही हाथमें रखते हैं, सीधेको (बाणको) छोड़ देते हैं, पर टेढ़े (धनुष) को नहीं छोड़ते हैं; क्योंकि उसपर कृपा विशेष रखते हैं, यह कहीं जायगा तो फँस जायगा।

इसलिये जैसे भी हो, अपनी ओरसे सरल, सीधे होकर भगवान्‌के चरणोंकी शरण चले जाओ, बस। आश्रय भगवान्‌का पकड़े रखो। फिर आप डरो मत कि हम कैसे हैं, कैसे नहीं हैं, इसकी जरूरत नहीं है।

नाम गरीब अनेक नेवाजे।
लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५। २)

नाम महाराजने तो कई गरीबोंके ऊपर कृपा कर दी है। लोकमें और वेद-शास्त्रोंमें सब जगह नामकी विरदावली (यशकी प्रतिष्ठा) प्रसिद्ध है।

राम भालु कपि कटकु बटोरा।
सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५। ३)

सुग्रीवसे मित्रता हो गयी, फिर युद्धकी तैयारी होने लगी। श्रीरामजीने भालू (रीछ) और बन्दरोंकी बड़ी भारी सेना इकट्ठी की और समुद्रसे पार उतरनेके लिये पुल बनानेमें कितना परिश्रम किया ! यह सब कोई जानते ही हैं।

नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं।
करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५। ४)

भगवान्‌का नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है और फिर तो पैदल ही चले जाओ पार। तैरना ही नहीं पड़े। कोई पुल बनानेकी भी जरूरत नहीं। ऐसे नाम महाराजको परिश्रम करना नहीं पड़ता। '**करहु बिचारु सुजन मन माहीं**' पहले यह बात कह आये हैं '**को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥**' यहाँ कहते हैं कि सज्जन लोग मनमें ही विचार कर लो, हम छोटा-बड़ा क्या बतावें, आप ही विचार कीजिये कि इन दोनोंमें बड़ा कौन है ?

राम सकुल रन रावनु मारा।
सीय सहित निज पुर पगु धारा॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५। ५)

श्रीरामजीने कुटुम्बसहित रावणको मार दिया और उसके बाद सीताजीके सहित आप श्रीरघुनाथजी महाराज अयोध्यामें पधार गये।

राजा रामु अवध रजधानी ।
गावत गुन सुर मुनि बर बानी ।।

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५ । ६)

राज-सिंहासनपर आप विराजमान हो गये और अयोध्या राजधानी हुई। देवता, ऋषि, मुनि, सन्त-महात्मा आदि उनकी बड़ी सुन्दर स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ वाणीसे उनका वर्णन करते हैं। इस प्रकार यह तो रामजी महाराजने स्वयं ऐसा किया कि दुष्टोंको मारकर श्रेष्ठ राजधानी बना ली। अब देखो ! नाम महाराज क्या करते हैं ?

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती ।
बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ।।

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५ । ७)

जो भगवान्‌का सेवक (भक्त) प्रीतिसहित नाम-जप करता है, वह मोहरूपी रावणकी काम, क्रोध, लोभ, मद, पाखण्ड आदि बड़ी भारी कलियुगकी सेनाको '**बिनु श्रम**' बिना परिश्रमके जीत जाता है। जब मोहको ही जीत गया तो सेना कहाँ रहे बेचारी ! मोहके साथ सारी सेना भी खतम हो जाती है, फिर क्या करता है ? '**फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें।**' सुखमें मस्त हुआ घूमता रहता है। प्रेम-सहित नामका स्मरण करनेसे यह सब हो जाता है। रामजीके तो एक राजधानी है अयोध्या। नामकी राजधानी सब जगह है। जो भगवान्‌के नाम-प्रेमी होते हैं, उनका हृदय नाम महाराजकी राजधानी होती है।

'**नफा पाया है राम फकीरीमें।**'....कैसी बात है ! '**हाथमें तुम्बी बगलमें सोटा। ये चारों ही धाम जागीरीमें।।**' वहाँ तो एक अयोध्या ही राजधानी है, नामके तो चारों ही धाम जागीरी है।

फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें ।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें ।।

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५ । ८)

रामजी राजगद्दीपर बैठ गये फिर भी लवणासुर आदिने क्या-क्या आफत मचायी। राजगद्दीपर बैठनेपर भी रामजी सुखसे थोड़े ही रहे। नाम महाराजकी कृपासे जाग्रत्‌में तो क्या शोक आवे, स्वप्नमें भी शोक-चिन्ता नहीं सताती। ऐसे मस्त हो जाते हैं। इसलिये **'ब्रह्म राम तें नामु बड़'** पहले ब्रह्मसे नामको बड़ा बताया, अब रामसे बड़ा बता दिया।

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २५)

इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म और सगुण भगवान् राम इन दोनोंसे यह नाम बड़ा है और वरदान देनेवालेको वरदान देनेवाला है। मानो भगवन्नामका जो सहारा लेता है तो दुनियाको वरदान दे दे, इतनी ताक़त उसमें आ जाती है, सामर्थ्य आ जाती है, ऋद्धि-सिद्धि सब कुछ उसमें आ जाती है। भुक्ति और मुक्ति कुछ भी बाकी नहीं रहती। इसलिये दोनोंसे ही यह बड़ा है। जैसे—

'रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि।'

भगवान् शंकर वरदान देनेवाले हैं, वे भी वरदान देते हैं तो किसके प्रभावसे—नामके प्रभावसे!

अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

(अध्यात्म, युद्धकाण्ड, १५।६२)

यह जो आपका 'राम' नाम मन्त्र है, मरनेवालेको उसकी मुक्तिके लिये मैं इसका उपदेश देता हूँ। भगवान् शंकरको भी दानी बना दिया नाम महाराजने । नाममें भगवान् शंकरका बहुत प्रेम है। वाल्मीकिजी महाराजने रामायण बनायी तो सौ करोड़ श्लोकोंकी रामायण बनायी और लाकर भगवान् शंकरके आगे रखी, जो सदा ही भगवान् रामका

नाम लेनेवाले हैं, रामचरितमें ही मस्त रहनेवाले हैं।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

(मानस, बालकाण्ड, ३५। ११)

रामचरितको रचकर अपने मनमें ही रखा और अवसर पाकर पार्वतीको उपदेश दिया। वाल्मीकि बाबाने देखा कि रामायणको रखनेवाले भगवान् शंकर हैं, इसलिये सब-की-सब सौ करोड़ श्लोकों-वाली रामायण उनके सामने रख दी। सौ करोड़ श्लोकोंकी रामायण देखी तो महाराज भगवान् शंकर बहुत खुश हुए। बड़े लोगोंका स्वभाव होता है कि जब वे प्रसन्न होते हैं और किसी चीजसे लाभ देखते हैं तो वे चाहते हैं कि भैया ! यह चीज तो सबको ही मिलनी चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष उदार होते हैं। शंकरभगवान्ने देखा कि रामायण इतनी बढ़िया है कि इसे सबको ही देना चाहिये। इसलिये तीन विभाग करके त्रिलोकीको बाँटने लगे। तीनों लोकोंको तैंतीस-तैंतीस करोड़ दिया तो एक करोड़ बच गया। उस एक करोड़के तीन भाग किये तो एक लाख बच गया। एक लाखके फिर तीन भाग किये तो एक हजार बच गया। एक हजारके तीन भाग किये तो सौ बच गया। उसके भी तीन भाग किये तो एक श्लोक बचा। इस प्रकार रामायणमें जो सौ करोड़ श्लोक हैं, उनको तीन भाग करके बाँटते-बाँटते अन्तमें एक अनुष्टुप् श्लोक बच गया। एक अनुष्टुप् छन्दके श्लोकमें बत्तीस अक्षर होते हैं। उनमें-से दस-दस करके तीनोंको दे दिया। तो अन्तमें दो अक्षर बचे। भगवान् शंकरने विचार किया कि तीन अक्षर होते तो उनको भी बाँट देते। अब इन दो अक्षरोंको किसको देवें और किसको नहीं देवें। इसलिये ये दो अक्षर 'रा' और 'म' हम रख लेंगे। बँटवारेमें कुछ मिलना चाहिये न ! भगवान् शंकरने कहा, 'बस हमारे तो सार यही है। राम राम !' इन दो अक्षरोंके अन्तर्गत ही है सब रामायण। जितने

शास्त्र हैं, जो कुछ भी है, भगवान्‌के नामके अन्तर्गत ही हैं। भगवान् भी वशमें हो जायँ, औरोंकी बात ही क्या है ? इसलिये यह 'राम' नाम निर्गुण और सगुण दोनोंसे ही बढ़कर है।

चारों वेद ढंढोर के अन्त कहोगे राम।
सो रज्जब पहले कहो एते ही में काम॥

नामका प्रभाव

अब आगे भगवान्‌के नाम लेनेवाले भक्तोंको गिनाते हैं। उन लोगोंने कैसे नाम लिया, वह भी बताते हैं।

नाम प्रसाद संभु अबिनासी।
साजु अमंगल मंगल रासी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६।१)

नामके प्रसादसे ही शिवजी अविनाशी हैं और अमङ्गल वेषवाले होनेपर भी मङ्गलकी राशि हैं। शंकर अविनाशी किससे हुए ? तो कहते हैं 'नाम-प्रसाद'—नामके प्रभावसे।

एक बार नारदजीने पार्वतीके शंका पैदा कर दी कि 'भोले बाबासे पूछो तो सही कि ये मुण्डमाला जो पहने हुए हैं, यह माला क्या है ?' पार्वतीने पूछा— 'महाराज ! आपने यह माला पहन रखी है यह क्या है ?' शंकर टालने लगे। 'क्या करोगी पूछकर ?' पर उसने कहा, 'नहीं महाराज ! आप बताओ।' तो शंकर कहने लगे—'बात यह है कि तुम्हारे इतने जन्म हुए हैं। तुम्हारा एक-एक मस्तक लेकर इतनी माला बना ली हमने।' पार्वतीको आश्चर्य हुआ। वह बोली— 'महाराज ! मेरे तो इतने जन्म हो गये और आप वही रहे, इसमें क्या कारण है ?' उन्होंने बताया कि हम अमरकथा जानते हैं। 'फिर तो अमरकथा हमें भी जरूर सुनाओ।' हठ कर लिया ज्यादा, तो एकान्तमें जाकर कहा—'अच्छा तुमको सुनायेंगे, पर हरेकको नहीं सुनायेंगे।' भगवान् शंकर सुनाने लगे, भगवान्‌का नाम और भगवान्‌का चरित्र।

अमर कथा यही है। भगवान् शंकरने सब पक्षियोंको उड़ानेके लिये तीन बार ताली बजायी। उस समय और दूसरे सभी पक्षी उड़ गये,पर एक सड़ा गला तोतेका अण्डा पड़ा था, उसने इस कथाको सुन लिया। पार्वतीने हठ तो कर लिया; परंतु उसे नींद आ गयी।

एक तो प्रेमसे सुननेकी स्वयंकी उत्कण्ठा होती है और एक दूसरेकी प्रेरणासे इच्छा की जाती है। पार्वतीने नारदजीकी प्रेरणासे इच्छा की थी, इस कारण नींद आ गयी। जिसके स्वयंकी लगन होती है, उसको नींद नहीं आती। पार्वतीको नींद आ गयी, तोता सुनते-सुनते हाँ-हाँ कहने लगा। भगवान् शंकर मस्त होकर भगवान्का चरित्र कहे जा रहे हैं और उसीमें मस्त हो रहे हैं। आँख खोलकर जब देखा तो तोता बैठा है और सुन रहा है। 'अरे ! इसने चोरीसे नाम सुन लिया !' वह वहाँसे उड़ा, शंकर भगवान् पीछे भागे। त्रिशूल हाथमें लिये हुए पीछे-पीछे गये। उस समय वेदव्यासजीकी स्त्री सिर गुँथा रही थी। उसको भी नींद आ रही थी थोड़ी। उसका मुख खुला था। वह मुखके भीतर प्रवेश कर गया। वे ही शुकदेव हुए, शुकदेवमुनि जो राजा परीक्षितको मुक्ति दिलानेवाले, भागवत सप्ताह सुनानेवाले हुए। वे शुकदेवजी माँके पेटमें ही नाम-जपमें लग गये। शुकदेव मुनि इस तरहसे श्रेष्ठ हुए। पार्वतीको अमरकथा सुनायी, जिससे पार्वती भी अमर हो गयी।

अमर कैसे हों ? **'नाम-प्रसाद'**—नामकी कृपासे भगवान् शंकर अविनाशी हो गये। उनका साज देखा जाय तो महाराज ! सर्प है, मुर्देकी राख है, मुण्डमाला है। ऐसा अमङ्गल साज है, विचित्र ढंगका साज है। भगवान् शंकरके साज विचित्र हैं ! भगवान् शंकरके साज अमङ्गल हैं, केवल इतनी ही बात नहीं है, बड़ी आफत है महाराज ! इधर तो खुदका गहना साँप है और उधर गणेशजीका वाहन चूहा है। इधर आपका वाहन बैल है तो भवानीका वाहन सिंह है। इस प्रकार घरमें एक दूसरेकी कितनी कलह है, इसको तो वे ही जानें। भगवान्

शंकर ही निभाते हैं। विरोधी-ही-विरोधी इकट्ठे हुए हैं सभी । सर्प गलेमें बैठा है तो कार्तिकेयके मयूर है। मयूर साँपको खाने दौड़े तो साँप चूहेको खाने दौड़े। ऐसे एक-एकके वैरी हैं। यह दशा है घरमें। ऐसे साज हैं अमङ्गलराशि ! फिर भी मङ्गलराशि हैं। 'शिव-शिव' कहनेसे कल्याण हो जाय, उद्धार हो जाय, मङ्गल हो जाय। सदा ही सबके मङ्गल कर दे। इसमें कारण क्या है ? यह नाम महाराजकी कृपा है।

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। २)

शुकदेव मुनि, वही तोता जिसने अमरकथा सुनी और सनकादि सिद्ध, मुनि और योगी लोग हरदम भगवान्का नाम लेते हुए भगवान्के चरणोंमें ही रहते हैं। सनकादि हमेशा पाँच वर्षकी बालक-अवस्थामें ही रहते हैं। ये ब्रह्माजीसे सबसे पहले प्रकट हुए, सृष्टि पीछे हुई, ऐसे इतने पुराने; परंतु देखनेमें छोटे-छोटे बच्चे, चार-पाँच वर्षके । वे सदा नग्न रहनेवाले महात्माकी तरह घूमते फिरते हैं। सदैव **'हरिः शरणम्'** ऐसे रटते रहते हैं। वे नामके प्रसादसे ब्रह्मसुख लेते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ३)

संसारको तो विष्णु भगवान् प्यारे लगते हैं, वे संसारका पालन-पोषण करनेवाले हैं। जैसे बालकको माँ बड़ी प्यारी लगती है **'मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्'**— शरीरका पालन करनेमें माँके समान कोई नहीं है। कोई आफत हो तो बालकको माँ याद आती है। हम भाई-बंहन जितने हैं, हम सबका पालन-पोषण माँने ही किया है। माँकी तरह संसारमात्रका पालन करनेवाली शक्ति (माँ) है भगवान् हरि (विष्णु)। नारदजी भगवान्के नामका कीर्तन करते हैं। इस नामके

कारण भगवान् विष्णुको और भगवान् शंकरको भी प्यारे लगने लगे। इस प्रकार सबको प्रिय लगनेवाले नारदजी महाराज हो गये।

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ४)

नाम महाराजकी कृपासे प्रह्लादजी महाराज भक्तशिरोमणि हो गये। जहाँ भागवतोंको नमस्कार किया, वहाँ प्रह्लादजीका नाम पहले और गुरुजी— नारद बाबाका नाम पीछे है।

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान्परमभागवतान्स्मरामि॥

बाल्यावस्थामें ही रात-दिन लग गये। इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतनी दृढ़ता कि हिरण्यकशिपुसे इतनी दुनिया काँपती, देवता भी काँपते, ऐसे पितासे भी कोई भय नहीं, कहीं किसी तरहका भय देखातक नहीं। वे तो बस, नाम जपते हैं मस्तीसे। यह क्या है? नाम-प्रसाद है। जप करनेसे ऐसी कृपा हुई।

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ५)

ध्रुवजी महाराजने भी नाम-जप किया, पर ग्लानिसे किया। विमाताके कठोर वचनोंसे दुःखी होकर राज्यके लिये सकाम भावसे भजनमें लगे। छोटे बालक होकर भी कितनी हिम्मत की! इसलिये कहते हैं—

हिम्मत मत छाड़ो नरां मुख सूँ कहता राम।
हरिया हिम्मत सूँ किया ध्रुवका अटल धाम॥

नारदजीने कहा—'अरे जंगलमें अकेला कहाँ रहेगा? भय

लगेगा। वहाँ जंगलमें माँ थोड़ी बैठी है। कहाँ जा रहा है तू !' तो कहते हैं—'मैं तो भगवान्‌का भजन करूँगा।' फिर कई प्रलोभन दिये, बहुत-सी बातें बतायीं नारद बाबाने, पर डिगा ही नहीं। '**पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥**' उसने राज्यके लिये ही भजन किया था। इसलिये भगवान्‌ने कहा कि 'इसके रहनेके लिये अटल धाम बनाता हूँ, जहाँसे कोई विचलित न कर सके।' ऐसा ध्रुवलोक हो गया।

हनुमान्‌जीका सेवाभाव

सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६।६)

हनुमान्‌जीने महान् पवित्र नामका स्मरण करके श्रीरामजीको अपने वशमें कर रखा है। हरदम नाममें तल्लीन रहते हैं। '**रहिये नाममें गलतान**' रात-दिन नाम जपते ही रहते हैं। हनुमान्‌जी महाराजको खुश करना हो तो राम-नाम सुनाओ, रामजीके चरित्र सुनाओ; क्योंकि '**प्रभुचरित्र सुनिबेको रसिया**' भगवान्‌के चरित्र सुननेके बड़े रसिया हैं।

रामजीने भी कह दिया, '**धनिक तूँ पत्र लिखाउ**' हनुमान्‌जीको धनी कहा और अपनेको कर्जदार कहा। रामजीने देखा कि मैं तो बन गया कर्जदार पर सीताजी कर्जदार न बनें तो घरमें ही दो मत हो जायेंगे। इसलिये रामजीका संदेश लेकर सीताजीके चरणोंमें हनुमान्‌जी महाराज गये। जिससे सीताजी भी ऋणी बन गयीं। 'बेटा, तूने आकर महाराजकी बात सुनायी। ऐसा सन्देश और कौन सुनायेगा !' रामजीने देखा कि हम दोनों तो ऋणी बन गये, पर लक्ष्मण बाकी रह गया। जब लक्ष्मणके शक्तिबाण लगा, उस समय संजीवनी लाकर लक्ष्मणजीके प्राण बचाये। '**लक्ष्मण-प्राणदाता च**' इस प्रकार जंगलमें आये हुए तीनों तो ऋणी बन गये, पर घरवाले बाकी रह गये। भरतजीको जाकर सन्देश सुनाया कि रामजी महाराज आ रहे हैं। हनुमान्‌जीने बड़ी चतुराईसे संक्षेपमें सारी बात कह दी।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।
सीता सहित अनुज प्रभु आवत ॥

(मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा २ । ५)

पहले जब हनुमान्‌जी आये थे तो भरतजीका बाण लगा था, उस समय उन्होंने वहाँकी बात कही कि 'युद्ध हो रहा है, लक्ष्मणजीको मूर्च्छा हो गयी है और सीताजीको रावण ले गया है।' अब किसकी विजय हुई, क्या हुआ ? इसका पता नहीं है ? यह सब इतिहास जानना चाहते हैं भरतजी महाराज। तो थोड़ेमें सब इतिहास सुना दिया। ऐसे **'अपने बश करि राखे रामू ॥'** इनकी सेवासे रामजी अपने परिवारसहित वशमें हो गये। ऐसी कई कथाएँ आती हैं। हनुमान्‌जी महाराज सेवा बहुत करते थे। सेवा करनेवालेके वशमें सेवा लेनेवाला हो ही जाता है।

सेवा करनेवाला ऐसे तो छोटा कहलाता है और दास होकर ही सेवा करता है; परंतु सेवा करनेसे सेवक मालिक हो जाता है और सेवा लेनेवाला स्वामी उसका दास हो जाता है। स्वामीको सेवककी सब बात माननी पड़ती है। संसारमें रहनेकी यह बहुत विलक्षण विद्या है—सेवा करना **'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'** सेवक धर्म बड़ा कठोर है। भरतजी महाराज भी यही कहते हैं। ऐसे सेवा-धर्मको हनुमान्‌जी महाराजने निभाया।

वे रघुनाथजी महाराजकी खूब सेवा करते थे। जंगलमें तो सेवा करते ही थे, राजगद्दी होनेपर भी वहाँ हनुमान्‌जी महाराज सेवा करनेके लिये साथमें रह गये। एक बारकी बात है। लक्ष्मणजी और सीताजीके मनमें आया कि हनुमान्‌जीको कोई सेवा नहीं देनी है। देवर-भौजाईने आपसमें बात कर ली कि महाराजकी सब सेवा हम करेंगे। सीताजीने हनुमान्‌जीके सामने बात रखी कि 'देखो बेटा ! तुम सेवा करते हो ना ! अब वह सेवा हम करेंगे। इस कारण तुम्हारे लिये कोई सेवा नहीं है।'

हनुमान्‌जी बोले, 'माताजी ! आठ पहर जो-जो सेवा आपलोग करोगे, उसमेंसे जो बचेगी, वह सेवा मैं करूँगा। इसलिये एक लिस्ट बना दो।' बहुत अच्छी बात। अब कोई सेवा हनुमान्‌के लिये बची नहीं। हनुमान्‌जी महाराजको बहाना मिल गया। भगवान्‌को जब उबासी आवे तो चुटकी बजा देवें।

शास्त्रोंमें, स्मृतियोंमें ऐसा वचन आता है कि उबासी आनेपर शिष्यके लिये गुरुको भी चुटकी बजा देनी चाहिये। इसलिये रघुनाथजी महाराजको उबासी आते ही चुटकी बजा देते थे, यह सेवा हो गयी। अब वह उस कागजमें लिखी तो थी ही नहीं। चुटकी बजानेकी कौन-सी सेवा है ! रात्रिके समय हनुमान्‌जीको बाहर भेज दिया। अब तो वे छज्जेपर बैठे-बैठे मुँहसे 'सीताराम, सीताराम, सीताराम' कीर्तन करते रहते और चुटकी भी बजाते रहते। न जाने कब भगवान्‌को उबासी आ जाय। अब चुटकी बजाने लगे तो रामजीको भी जँभाई आनी शुरू हो गयी। सीताजीने देखा कि बात क्या हो गयी ? घबराकर कौशल्याजीसे कहा और सबको बुलाने लगी। वसिष्ठजीको बुलाया कि रामलल्लाको आज क्या हो गया। वसिष्ठजीने पूछा, 'हनुमान् कहाँ है ?' 'उसको तो बाहर भेज दिया।' 'हनुमान्‌को तो बुलाओ।' हनुमान्‌जीने आते ही ज्यों-ही चुटकी बजाना बन्द कर दिया, त्यों ही भगवान्‌की जँभाई भी बन्द हो गयी। तब सीताजीने भी सेवा करनेकी खुली कर दी। इस प्रकार हृदयमें रामजीको वशमें कर लिया।

भरतजीने भी हनुमान्‌जीसे कह दिया **'नाहिन तात उरिन मैं तोही।'** तुमने जो बात सुनायी, उससे उऋण नहीं हो सकता। **'अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।'** अब भगवान्‌के चरित्र सुनाओ। खबर सुनानेमात्रसे तो आप पहले ही ऋणी हो गये। चरित्र सुनानेसे और अधिक ऋणी हो जाओगे। भरतजीने विचार किया कि जब कर्जा ले लिया तो कम क्यों लें ? कर्जा तो ज्यादा हो जायगा, पर रामजीकी कथा तो सुन लें।

हनुमान्‌जी महाराजको प्रसन्न करनेका उपाय भी यही है और उऋण होनेका उपाय भी यही है कि उनको रामजीकी कथा सुनाओ, चाहे उनसे सुन लो। रामजीकी चर्चासे वे खुश हो जाते हैं। इस प्रकार हनुमान्‌जीके सब वशमें हो गये।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ।
भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ७)

अब जो आचरणोंसे, योनिसे, सब तरहसे बहुत नीच हैं, वे भी नामके प्रभावसे मुक्त हो गये। ऐसे भक्तोंके उदाहरण देते हैं। अजामिल ब्राह्मण घरमें जन्मा था, पर वेश्याके घरमें चला गया, ऐसे आचरणोंसे गिर गया था। गणिका तोतेको पढ़ाया करती। बोलो राधेकृष्ण! राधेकृष्ण! गोपीकृष्ण! वह कोई नाम-जप नहीं कर रही थी, पर साँपने काटा और मरी तो मुक्त हो गयी। हाथी—गजराज भी मुक्त हो गया। ये सब-के-सब भगवन्नामके प्रभावसे मुक्त हो गये। इस प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे भगवान् शंकरसे लेकर पापी-से-पापी वेश्यातककी बात कह दी। इसका अर्थ हुआ कि भगवन्नाम लेनेके सब अधिकारी हैं। कोई भी अनधिकारी नहीं है। भक्ति करनेके सब अधिकारी हैं। शाण्डिल्य सूत्रमें आता है—'**आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्**' निन्दनीय-से-निन्दनीय योनिवाला और निन्दनीय-से-निन्दनीय कर्म करनेवाला कोई हो, वह भी भगवान्‌के चरणोंकी शरण चला जाय तो उसके लिये भी मना नहीं है। कितनी विचित्र बात है! नामकी महिमा ऐसे कहते-कहते गोस्वामीजी महाराज मस्त हो जाते हैं।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६। ८)

नामके गुण गानेमें भगवान् राम स्वयं भी असमर्थ हैं, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है, क्योंकि नामकी महिमा अपार है। भगवान् सर्वसमर्थ हैं, साथ-साथ सर्वज्ञ भी हैं। नामकी अपार महिमा जानते हैं, पर कह नहीं सकते तो क्या इसमें रामजीकी निन्दा हो गयी ! इसमें निन्दा नहीं है। यह नाम बड़ा है किनके लिये ? हम सांसारिक लोगोंके लिये। रामजीसे और ब्रह्मसे भी बड़ा है। नामसे भगवान् प्रकट हो जायँ, तत्त्वज्ञान हो जाय, इस कारण हमारे लिये नाम बड़ा है। किसी धनी आदमीके बारेमें कहें कि उसके पास इतना धन है कि उसको खुदको भी पूरा पता नहीं है कि कितना है। इसमें उसकी निन्दा कैसे हुई ? यह तो उसकी प्रशंसा ही हुई।

कलियुगमें नाम-महिमा

नामु रामको कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २६)

कल्पतरुमें सब चीजें रहती हैं। उससे जो चाहो, मिल जाय। कलियुगमें मन-चाहा पदार्थ देनेवाला 'राम' नामरूपी कल्पवृक्ष है और कल्याणका निवास-स्थान 'राम' नाम है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं कि इसके लिये मैं दूसरेकी क्या गवाही दूँ। भाँग पीनेसे नशा आ जाय, बुद्धि बावली हो जाय और माथा खराब हो जाय, ऐसा भाँगका प्रभाव होता है। मैं भाँगके समान था, पर नामका स्मरण करनेसे भाँगके समान मैं तुलसीदास तुलसी बन गया। तुलसी-दल बिना बढ़िया-से-बढ़िया चीजें भी ठाकुरजीके भोग नहीं लगती। इसलिये अब नामकी महिमा कहाँतक कहूँ, मैं खुद ही उदाहरण हूँ।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका।
भए नाम जपि जीव बिसोका॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७।१)

केवल कलियुगकी बात नहीं है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों ही युगोंमें और भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें तथा स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों ही लोकोंमें सब-के-सब जीव भगवान्‌का नाम लेकर सदाके लिये चिन्ता-रहित हो गये।

बेद पुरान संत मत एहू।
सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७। २)

विशेष ध्यान देनेकी बात है। वेद, पुराण और सन्त सबका इसमें एक मत है। क्या? '**सकल सुकृत फल राम सनेहू॥**' रामजी और रामजीके नाममें स्नेह हो जाय तो सम्पूर्ण पुण्योंका फल मिल गया। मानो वे भाग्यशाली हैं, जो भगवान्‌का नाम लेते हैं। नाम-जपमें स्वतः रुचि हो गयी तो समझना चाहिये कि सम्पूर्ण पुण्योंने आकर एक साथ फल दे दिया। इसका रहस्य नाम लेनेवाले ही समझते हैं। साधारण आदमी समझ नहीं सकते। कलियुगमें विशेष क्या बात है? वह आगे कहते हैं—

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७। ३-४)

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान लगाकर तल्लीन होनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती थी। त्रेतायुगमें यज्ञ करनेसे और द्वापरयुगमें भगवान्‌का पूजन करनेसे प्राप्ति होती थी; परंतु '**कलि केवल मल मूल मलीना**' अब ध्यान दो भाई! कलियुगमें क्या है? क्या बतावें? कलियुगमें पाप ही मूल हो गया है। मनुष्योंका मन पापरूपी समुद्रकी मछली बन गया है। मछलीको जैसे जलसे दूर करनेसे मुश्किल हो जाती है, वह तड़पने लगती है, ऐसे आज अगर कह दिया जाय कि झूठ, कपट,

ब्लैक मत करो तो उनका मन व्याकुल हो जायगा। मनुष्योंका मन पापसे कभी अलग होना चाहता ही नहीं। उनसे ध्यान, यज्ञ और पूजन कुछ नहीं बन सकते।

नाम कामतरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जग जाला॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७।५)

कराल काल (कलियुग)में नाम कल्पवृक्ष है। कल्पवृक्ष इसलिये बताया कि इस नामसे ध्यान, यज्ञ, पूजन आदि सब हो जायेंगे। '**नाम लिया उसने सब किया जोग जग्य आचार।**' एक जगह व्याख्यान हो रहा था तो एक बड़े अच्छे सन्त थे, उन्होंने कहा—'नाम जपके सिवाय कलियुगमें दूसरा कुछ साधन नहीं हो सकता। इसमें ध्यानयोग, कर्मयोग, अष्टांगयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग कोई भी योग नहीं हो सकता। कलियुगमें केवल भगवान्‌का नाम ही लिया जा सकता है। इसलिये नाम-जप करना चाहिये।' ऐसे उन्होंने नामकी महिमा कही। उसके बाद पासमें बैठे महात्माने अपने व्याख्यानमें कहा—'बात बिलकुल ठीक है। नाम-जपके बिना कुछ नहीं हो सकता, पर नाम महाराजकी कृपासे ध्यान भी हो जायगा, यज्ञ भी हो जायगा, दान भी हो जायगा, पूजन भी हो जायगा, सब कुछ हो जायगा। नाम-जपसे अगर ये नहीं हुए तो नामकी महिमा ही क्या हुई?'

बड़े-बड़े साधन भी नाम महाराजकी कृपासे सुगम हो जायेंगे। यज्ञ, दान, पूजन, ध्यान, भजन चाहे जो करो, नाम महाराजका सहारा लेकर करोगे तो सब तरहकी योग्यता आ जायगी। जगत्‌के जालको शान्त करनेवाला नाम महाराज है।

राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७।६)

इस कलियुगमें 'राम' नाम मनचाहा फल देनेवाला है। परलोकमें हित करनेवाला है अर्थात् भगवान्‌का परम धाम दिलानेवाला है और लोकमें माता-पिताके समान हित करता है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—बालकका पालन-पोषण माँ-बापके समान कौन कर सकता है! पिताजी बाहरकी और माँ भीतरकी सब तरहसे रक्षा करती है।

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥ १ ॥
करम, उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावनके अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो ॥ २ ॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥ ५ ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

(विनय-पत्रिका, पद २२६)

जिसे दूसरेका भरोसा हो, वह भले ही करे, पर मेरे तो यह 'राम' नाम ही कल्पवृक्ष है। अन्तमें कहते हैं—**'मेरे तो माय-बाप दोउ आखर'**—मेरे तो माँ-बाप ये दोनों अक्षर 'र' और 'म' हैं। मैं तो इनके आगे बच्चेकी तरह अड़ रहा हूँ। यदि मैं कुछ भी छिपाकर कहता होऊँ तो भगवान् शंकर साक्षी हैं; मेरी जीभ जलकर या गलकर गिर जाय। गवाही देनेवालेसे कहा जाता है कि 'सच्चा-सच्चा कहते हो न? तो गङ्गाजल उठाओ सिरपर!' ऐसे भगवान् शंकर जो गङ्गाको हर समय सिरपर अपनी जटामें धारण किये हुए रहते हैं, उनकी साक्षीमें

कहता हूँ। वे कहते हैं तुलसीदासको तो यही समझमें आया कि अपना कल्याण एक 'राम' नामसे ही हो सकता है। इस प्रकार 'राम' नाम लेनेसे लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं। कितनी बढ़िया बात है !

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७। ७-८)

वेदोंमें तीन काण्ड हैं—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। इसलिये कहते हैं कि कलियुगमें कर्मका भी साङ्गोपांग अनुष्ठान नहीं कर सकते, भक्तिका भी साङ्गोपांग अनुष्ठान नहीं कर सकते और '**ग्यान पंथ कृपान कै धारा**' वह तो कड़ा है ही, कर ही नहीं सकते। तो कहते हैं एक 'राम' नाम ही अवलम्बन है उसके लिये।

यह कलियुग महाराज कालनेमि राक्षस है, कपटका खजाना है और नाम महाराज हनुमान्‌जी हैं। हनुमान्‌जी संजीवनी लेनेके लिये जा रहे थे। रास्तेमें प्यास लग गयी। मार्गमें कालनेमि तपस्वी बना हुआ बड़ी सुन्दर जगह आश्रम बनाकर बैठ गया। रावणने यह सुन लिया था कि हनुमान्‌जी संजीवनी लाने जा रहे हैं और संजीवनी सूर्योदयसे पहले दे देंगे तब तो लक्ष्मण जी जायगा और नहीं तो मर जायगा। इसलिये किसी तरहसे हनुमान्‌को रोकना चाहिये। कालनेमिने कहा कि 'मैं रोक लूँगा।' वह तपस्वी बनकर बैठ गया। हनुमान्‌जीने साधु देखकर उसे नमस्कार किया। 'तुम कैसे आये हो?' 'महाराज ! प्यास लग गयी।' तो बाबाजी कमण्डलुका जल देने लगा। 'इतने जलसे मेरी तृप्ति नहीं होगी।' 'अच्छा, जाओ, सरोवरमें पी आओ।' वहाँ गये तो मकड़ीने पैर पकड़ लिया, उसका उद्धार किया। उसने सारी बात बतायी कि 'महाराज ! यह कालनेमि राक्षस है और आपको कपट करके ठगनेके लिये बैठा है।'

हनुमान्‌जी लौटकर आये तो वह बोला—'लो भाई, आओ ! दीक्षा दें तुम्हारेको।' हनुमान्‌जीने कहा—'महाराज, पहले गुरुदक्षिणा तो ले लीजिये।' पूँछमें लपेटकर ऐसा पछाड़ा कि प्राणमुक्त कर दिये। कलियुग कपटका खजाना है। जो नाम महाराजका आश्रय ले लेता है, वह कपटमें नहीं आता।

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २७)

'राम' नाम नृसिंह भगवान् है। कलियुग महाराज हिरण्यकशिपु है और 'जापक जन'—भजन करनेवाले प्रह्लादके समान हैं। जैसे भगवान् नृसिंहने प्रह्लादकी हिरण्यकशिपुको मारकर रक्षा की थी, ऐसे भक्तोंकी रक्षा कलियुगसे नाम महाराज करते हैं। **'जिमि पालिहि दलि सुरसाल।'** यह 'राम' नाम देवताओंके शत्रु राक्षसोंको (कलियुगको) मारकर भजन करनेवालोंकी रक्षा करनेवाला है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥

(मानस, बालकाण्ड, दोहा २८। १-२)

भावसे, कुभावसे, क्रोधसे या आलस्यसे, किसी तरहसे नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें मङ्गल ही मङ्गल होता है। तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—ऐसे जो नाम महाराज हैं, उनका स्मरण करके और रघुनाथजी महाराजको नमस्कार करके मैं रामजीके गुणोंका वर्णन करता हूँ। प्रकरण आरम्भ किया तो **'बंदउँ नाम राम रघुबर को'** नाम-वन्दनासे आरम्भ किया और प्रकरणकी समाप्तिमें भी रामजीकी वन्दना करते हैं। नाम-वन्दना और नाम-महिमा करनेके बाद रामजीके

गुण और रामचरितकी महिमा कहते हैं। अपनेको ऐसा नाम मिल गया, बड़ी मौजकी बात है। इसमें सबका अधिकार है।

जाट भजो गूजर भजो भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाममें सब काहू का सीर॥
राम दड़ी चौड़े पड़ी सब कोई खेलो आय।
दावा नहीं सन्तदास जीते सो ले जाय॥

इसलिये नाम लेकर मालामाल हो जाओ, चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय राम राम राम राम.....।

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

——::o::——

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा विरचित उपलब्ध साहित्य

प्रवचन-संग्रह

१—मानसमें नाम-वन्दना
२—कल्याणकारी प्रवचन (प्रथम भाग)
३—कल्याणकारी प्रवचन (द्वितीय भाग)
४—कल्याणकारी प्रवचन (गुजरातीमें)
५—तात्त्विक प्रवचन
६—जीवनोपयोगी प्रवचन
७—साधकोंके प्रति
८—सत्संगकी विलक्षणता
९—जीवनका सत्य
१०—भगवन्नाम
११—भगवत्प्राप्तिकी सुगमता
१२—वास्तविक सुख
१३—शरणागति
१४—गृहस्थमें कैसे रहें ?
१५—सत्संगका प्रसाद
1—Benedictory Discourses
2—Art of living
3—Let us know the turth

गीता-साहित्य

१—साधक-संजीवनी (गीता हिन्दी-टीकासहित)
२—साधक-संजीवनी (गीता अंग्रेजी-टीकासहित)
३—गीताका आरम्भ
४—गीताका कर्मयोग (दो खण्डोंमें)
५—गीताका ध्यानयोग
६—गीताकी राजविद्या
७—गीताकी विभूति और विश्वरूपदर्शन
८—गीताका भक्तियोग
९—गीताका ज्ञानयोग
१०—गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा
११—गीता-माधुर्य
१२—गीता-दर्पण
१३—गीता-परिचय

मिलनेका पता—**गीताप्रेस, पो॰ गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ॰प्र॰)**